राजस्थान की गणगौर

राजस्थान की गणगौर

डॉ. महेन्द्र भानावत

भारतीय लोक-कला मण्डल, उदयपुर

अनुक्रम

राजस्थान की गणगौर १-५४

गणगौर-अर्थ और उद्भव १, विविध कथा-किवदंतियाँ २, होली; गणगौर रूप मे २, पुलोमजा द्वारा गणगौर पूजा ३, गणगौर-एक रहस्यमय लड़की ३, गौरीपूजा से कृष्ण का आगमन ४, गौरी-पूजा से राम की लंका-विजय ४, गणगौर उदयपुर की कन्या ४, मनवांछित वर प्राप्ति का त्यौहार ५, बालिकाओं का पिंडपूजन ८, राखपिंड से माटी प्रतिमाएं १२, उदयपुर की गणगौर १३, नाव की सवारी १५, नाथद्वारा की गणगौर १८, गोगुन्दा की गणगौर २०, घूमर नृत्य २०, लाखा फूलाणी २१, नथमल २१, गींदोली २२, बीकानेर की गणगौर २३, जयपुर की गणगौर २३, निमाड़ की गणगौर २४, महाराष्ट्र की गणगौर २५, भीलों की गणगौर २५, गरासियों की गणगौर २६, हाथी का तमाशा २८ हाजी की गणगौर २६, घुड़ला फिराना ३०, गणगौर का पहनावा ३२, शेखावाटी गणगौर ३४, धींगा गणगौर ३५, धींगा गवर की लोककथा ३५, हाड़ो ले डूब्यो गणगौर ३६, जवारा ३६, गणगौर का सिंझारा-दांतणहेला ३८, गणगौर पूजा ३६, गणगौर का ढोल ४०, गणगौर का टूंट्या ४०, गौर का अपहरण ४०, गणगौर पर रानीजी के दर्शन ४३, वस्त्राभूषणों की चाह ४३, गणगौर की भावभीनी विदाई ४४, मिट्टी की गणगौरें ४५, गणगौर का नख-शिख वर्णन ४६, गणगौरों पर दौड़ों का आयोजन ४६, गणगौर पर प्रियतम का आह्वान ४७, गौर का उद्यापन ४७, ब्यावला वर्ष ४६, गणगौर का भित्तिचित्र ४६, गणगौर की कहानी ४६,

गणगौर विषयक लोकगीत ५५-७२

अनोखा कुंवरजी ओ सायबा ५७, खेलण दो गणगौर ५८, खींपोली म्हारी खींपां छाई ६०, भर लावो रे पाणी सागर रो ६१, म्हांने थांणो झोंको यूं लागे ६२, देखो मोरी संझ्या ए ६४, म्हारी घूमर छे नखराली ए माँय ६५, लालर लेदो रे नोखीला ६६, झीणी घूमरलो जीजीबाई ६८, गुलाबी साड़ी गोरा सा मुखड़ा पे ६८, माथा नैं मेमद प्हैरिया सरी ६६, पांचे पुजारी ने पांचे पुजारा ७० ।

संस्थापकीय

जब से भारतीय लोककला मण्डल की स्थापना हुई, हमने अपने शोधकार्य को प्रकाशनों का स्वरूप प्रदान किया है, इसीलिए हम अपने प्रकाशनों का यह ४० वां पुष्प पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में समर्थ हुए हैं। पहले हमारा संग्रहालय इतना विकसित नहीं था; परन्तु जबसे वह दर्शकों एवं पर्यटकों के लिए आकर्षण-स्थल तथा शोधकर्मियों के लिए अध्ययन केन्द्र बना है, हमने अपने शोधकार्य को भी थोड़ा विषयान्तरित किया है।

वैसे संस्था का मुख्य लक्ष्य लोकविधाओं के रंगमंचीय पक्ष को उजागर करना है, परन्तु उनसे जुड़े पक्षों को भी हमने नकारा नहीं है। हमारी यह भी मान्यता है कि उन्हें नकारने से लोककलाओं का प्रदर्शनकारी रूप भी पूरी तरह नहीं निखर सकता है अतः पिछले कुछ वर्षों से हमने अपने नजरिये को थोड़ा चौड़ा किया है। इसीलिए हमारे संग्रहालयों में थापों, मेंहदी-मांडनों, सझ्याओं, गणगौरों, मोलेला-मूर्तियों, पड़ों तथा अनेक सांस्कृतिक काष्ठ-कलाओं ने स्थान प्राप्त किया है। यद्यपि इनका सम्बन्ध अधिकांशतः लोकवार्ता के व्यापक रूपों से जुड़ता है फिर भी इनके साथ जुड़े हुए गीत, नाटक, नृत्य तथा अन्य मनो-रंजनात्मक पक्ष भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

हमारे यहां देश-विदेशों से जितने भी शोधकर्मी आते हैं वे हमसे नाना प्रकार की अपेक्षाएं रखते हैं। कोई गंजफा, चौपड़, शतरंज जैसे खेलों की जान-कारी चाहते हैं तो कोई राजस्थानी वेशभूषाओं, अलंकरणों के वैविध्य के बारे में पूछताछ करते हैं। कुछ लोग अड़क कलाली जैसी जड़ी बूटियों के बारे में पूछते हैं। कुछ शोधकर्मी आदिम जातियों के घरों में प्रयुक्त होने वाले भांडे, बासन, अस्त्र-शस्त्र आदि की जानकारी चाहते हैं। हम अपनी संस्था को लोकवाङ्मय के इस विस्तृत क्षेत्र में सराबोर करने की क्षमता नहीं रखते और न अपने काम को इतना बिखेर ही देना चाहते हैं।

हमने १९६० तक अपनी शोध को केवल प्रदर्शनकारी लोककलाओं तक ही सीमित रखा था। हमारे अन्य विभाग तो अपने व्यावहारिक पक्ष को आज भी इसी ओर ढाले हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप कठपुतलियों के नाट्यरूप तथा उनके शैक्षणिक पक्ष को बड़ा बढ़ावा मिला है। लोकनाट्य एवं लोकनृत्यों के अनेक संस्कारित स्वरूप भी हमारे द्वारा उजागर हुए हैं; परन्तु जहां तक हमारे लोक-

कला संग्रहालय एवं शोध पक्ष का सवाल है, हमने उसके दायरे को थोड़ा फैलाया है। प्रस्तुत पुस्तक एवं पिछली कुछ पुस्तकें जैसे राजस्थान के थापे, मेंहदी मांडनें एवं सँझ्या आदि इसी दृष्टिकोण को परिपुष्ट करती हैं।

इन पुस्तकों के प्रणेता डॉ. महेन्द्र भानावत मूलतः लोकवाङ्मय के व्यक्ति हैं, इसीलिए उनकी पैनी दृष्टि लोकवाङ्मय के उन रूपों को भी पकड़ लेती है जो अनेक प्रदर्शकारी कलाओं को जन्म देते हैं। उनका दूसरा बहुत बड़ा गुण यह है कि वे किसी भी मत को अंतिम नहीं मान लेते, जब तक उस विधा पर व्यक्त किये अन्य विद्वानों के विचार वे हृदयंगम नहीं करलें। वे अपनी शोध के अधिकांश निष्कर्ष भी अध्येताओं के विवेक पर छोड़ देते हैं जो कि शोधकर्म का सर्वाधिक महत्वपूर्ण गुण है।

डॉ. भानावत सही माने में नजर के धनी हैं, क्योंकि वे किसी भी स्थिति में हों, सदा ही अपनी आंखें खुली रखते हैं। वे केवल टेबल-कुर्सी के ही अध्येता नहीं हैं और न वे अपने शोधकर्म को समय की सीमाओं में बांधते हैं। जहां भी वे जिससे भी मिलते हैं, जहां भी जाते हैं, वे अपनी निगाहें खोले रखते हैं और किसी भी विधा की, जहां भी सामग्री मिलती है, वे उसे अपनी पैनी नजर में उतार लेते हैं और जरूरत माफिक उसका प्रयोग करते हैं।

आज जो देश में आधुनिकता एवं पश्चिमी संस्कृति की लहर चली है उससे हमें जागरूक होना अति आवश्यक है। कला मण्डल के प्रायः सभी प्रकाशन इसी बात को मद्देनज़र रखे हुए हैं। वे स्वतन्त्र भारत के लिए बड़े महत्व के हैं। हमारे विगत प्रकाशनों को जो डॉ. भानावत द्वारा मोड़ प्राप्त हुआ है उसे मैं एक दृष्टि से विषयान्तर नहीं मानता, क्योंकि जिन पक्षों का उन्होंने स्पर्श किया है वे प्रायः हमारी निगाह से ओझल हो चले थे। यह विलगाव हमारी नई पीढ़ी के लिए बहुत घातक था। उन्हें पुनः संस्कृति के साथ जोड़ने में ये पुस्तकें बहुत ही उपयोगी सिद्ध होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

लोककला मण्डल ने भी अब यह पक्का निर्णय कर लिया है कि हमारे अधिकांश प्रकाशन लोकजीवन की इसी सांस्कृतिक धरोहर के साथ जुड़ेंगे, जिनके विविध रूप हम अपने संग्रहालय में प्रदर्शित करने में सतत प्रयत्नशील हैं। शोध-कर्मियों को भी अब इन प्रकाशनों से अपने शोधकार्य के लिए उपयोगी संकेत मिलेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि हमारे प्रकाशनों की यह दिशा सभी शोध-कर्मियों को पसन्द आयेगी।

देवीलाल सामर

लेखकीय

गणगौर राजस्थान का सर्वाधिक रंगीन और उल्लासपूर्ण त्यौहार रहा है। इसको देखने और इसका आनन्द लेने तो बाहर के व्यक्ति तक यहाँ आते रहते हैं। कला मण्डल के संग्रहालय में प्रदर्शित गणगौर-ईसर के दर्शन कर कई बार कई लोगों ने विस्तारपूर्वक इस त्यौहार की सांस्कृतिक पीठिका जानने की और इस सम्बन्धी साहित्य प्रकाशित करने की भावना व्यक्त की थी। प्रस्तुत पुस्तक उसी भावना का प्रतिफल है।

'गीतड़ों' में तो गणगौर की गूंज है ही मगर 'भींतड़ों' में भी इसकी अमरता व्यक्त हुई मिलती है। इस दृष्टि से उदयपुर के राजमहल का मरदाना महल उल्लेखनीय है। इस महल के 'कृष्ण विलास' नामक कक्ष की चारों दीवालें मेवाड़ी कला-संस्कृति विषयक अत्यन्त ही कलात्मक चित्रों से चित्रित हैं। इन चित्रों में गणगौर की सवारी का भी एक उत्कृष्ट कलाकारी लिए भित्तिचित्र है।

महाराणा मेवाड़ म्यूजियम के इन्चार्ज श्री तुलसीनाथजी धायभाई ने मुझे बताया कि ये सभी चित्र महाराणा भीमसिंहजी (सन् १७७८-१८२७) के समय के हैं। यह विशिष्ट कक्ष भी उन्हीं की लड़की कृष्णाकुमारी के नाम पर है। गणगौर का यह चित्र उदयपुर की गणगौर की पूरी सवारी लिये है जिसमें जनानी ड्योढ़ी से लेकर गणगौरघाट तक का पूरा जुलूस दिखाया गया है। श्री धायभाईजी ने मुझे यह भी बताया कि पिछोला तालाब का गणगौरघाट पहले राजघाट के नाम से जाना जाता था परन्तु इस घाट पर गणगौरें बिठाई जाने के कारण इसका यह नाम पड़ गया। यह घाट न केवल राजगणगौर अपितु सभी जाति की गणगौरों के लिए है। सबके अलग-अलग स्थान नियत हैं। महाराणा की ओर से प्रत्येक गणगौर को प्रसाद तथा रुपया-नारियल चढ़ाया जाता। अम्बामाता के नाम की भी एक गणगौर निकलती जो सत्ता-पोल तक लाई जाती। महाराणा नाव की सवारी से इस गणगौर के दरसण करते और दस्तूर माफिक भेंट-पूजा चढ़वाते।

काठ की गणगौर के साथ-साथ महलों में माटी की बनी गणगौर भी पूजी जाती। माटी की गणगौर-ईसर की जुड़वां मूर्ति मोतीचोहट्टे के चतारे के वहां से लाई जाती। पानी में यही मूर्ति पधराई जाती। इसके बाद एक मूर्ति और मंगवाई जाती जिसकी धींगा गणगौर तक पूजा की जाती। और अन्त में उसे भी पानी में विसर्जित करदी जाती। मोतीचोहट्टा का वह चतारा-घर

आज भी अपने पारम्परिक रूप में गणगौर की माटी मूर्तियां बनाता है जहां से गणगौर-महिलायें इन्हें खरीद कर ले जाती हैं। मैं इनसे भी मिला हूं।

गुलाबीनगर जयपुर के रेल्वे स्टेशन पर भी एक गणगौर की सवारी का दीवाल चित्र है जो हर यात्री का मन अपनी ओर खींच लेता है। यह चित्र राजस्थानी फ्रेस्को शैली में प्रख्यात् चित्रकार श्री गोवर्द्धनलालजी जोशी द्वारा बनाया गया है। जोशी जी ने मुझे बताया कि सन् १९६४ में राजस्थान ललित कला अकादमी के अध्यक्ष श्री रामनिवासजी मिर्धा की प्रेरणा से यह चित्र बनाया गया था जो १२×६ इन्च की साइज का है। नाथद्वारा की गणगौर का अपना वैशिष्ट्य होने के कारण यहां कपड़े पर बनी गणगौर की सवारी के चित्र बहुत लोकप्रिय हैं। यहीं के श्री मजीदखाँ परवेज ने उदयपुर में रहकर इस सवारी चित्र को बातीक में बड़ी खूबसूरती से ढाला है। इनके बने बातीक-चित्र विदेशी पर्यटकों में भी काफी लोकप्रिय हुए हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में जो गणगौर-चित्र दिया जा रहा है वह भीलवाड़ा के प्रख्यात पड़-चित्रकार श्रीलालजी जोशी का बनाया हुआ है। पड़ों संबंधी जानकारी के लिए जब मैं इनके घर पहुंचा तो मैंने यह चित्र-थापा इनके घर की दीवाल पर बना देखा था। गणगौर के इस थापे में गणगौर के एक ओर उनकी सहेली (डावड़ी) तथा दूसरी ओर ईसरजी हैं जो हाथ में हुक्का पकड़े हैं तथा जिनके सिर पर गंगा खलकती दिखाई गई है। श्रीलालजी ने मुझे बताया (१३-५-७७) कि इस थापे के नीचे कुंवारी कन्याएँ काली मिट्टी के अथवा हल्दी मिले आटे के लङूले लङूली बनाती हैं। इनके साथ दहेज का सामान भी बनाया जाता है। औरतें इस थापे को तब ही पूजना प्रारम्भ करती हैं जबकि उनके पहले लड़कियाँ उन लङूले लङूली को न पूज लें।

कलाकार श्री तुलाराम ने बताया कि गणगौर के दिनों में महाराणी साहिबा भी गणगौर की ही तरह की पोशाक धारण करतीं। नाव की सवारी पर प्रतिदिन जो विविध रंगी पोशाकें राजमहल से संबंधित सभी व्यक्ति पहनते तो अन्दर जनानखाना में भी रानीजी और उनकी समस्त दासियाँ-बाइयाँ भी वही रंग लिए होतीं। यह सारी पोशाक गणगौर, घूमर तथा नाव की सवारी के विविध चितराम लिए होती। महारानीजी के लिए यह पोशाक अधिकाधिक कीमती होती। प्रत्येक चित्र पर जरी का बहुमूल्य काम करवाया जाता। इन्हीं तुलाराम के साथ विविध रंगी गणगौर की ऐसी बेशकीमती कसूमल, हरी, पीली, गुलाबी तथा भूपालशाही साड़ियाँ राजमाताजी की विशेष कृपा से मुझे भी देखने को (१६-१०-७७) मिलीं।

इनकी उत्कृष्ट कलाकारी देखते ही बनती है। भूपालशाही साड़ी का प्रथम बार चलन राजमाताजी द्वारा ही हुआ। सभी साड़ियाँ सेफुन नामक कपड़े की बनी हुई हैं। चालीस-पचास वर्ष पुरानी ये साड़ियाँ जितनी बहुमूल्य हैं, वजन में भी कम नहीं हैं। आज की नारियाँ तो इन साड़ियों का वजन शायद ही अपने शरीर पर बर्दाश्त कर सकने में समर्थ हों। राजमाताजी की विशेष सेविका श्रीमती सीताबाई ने बताया कि ये सड़ियाँ उदयपुर के गोवर्द्धन लालजी पटवा के मार्फत मोतीवाला तथा चौकीवाला बोहरों द्वारा बनवाई गई थीं। लगभग सभी साड़ियाँ स्वर्गीय महाराणा साहब श्री भूपालसिंहजी के विविध चित्रों से सलमासितारित हैं।

इस पुस्तक को तैयार करने में प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में मुझे कई महानुभावों का सहयोग मिलता रहा है। अपने विभाग के श्री गोपाल वर्मा ने इसके अंडज' से लेकर इस रूप में लाने तक की सभी महत्वपूर्ण भूमिकाओं में मेरा साथ दिया है। प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री दीनदयाल ओझा की लिखी 'राजस्थान का वासंतिक पर्व गणगौर' पुस्तक ने भी मुझे यह पुस्तक लिखने की प्रेरणा दी है। बीकानेर के श्री उदय नागोरी ने मुझे कई लोगों से भेंट कराने तथा सामग्री संचित करवाने में मेरा सहयोग किया है। जयपुर प्रिंटर्स जयपुर के आदरणीय सोहन लालजी जैन ने बड़ी खूबसूरती से अपना ही कार्य समझकर इसके कवर को जो उत्कृष्ट रंग-संयोजन और प्रकाशन दिया है इससे यह पुस्तक सबकी मन-भावन हो गई है। कवर पर के माटी के गणगौर-ईसर नामक चित्रों का संयोजन संस्था के काष्ठ-चितेरे मांगीलाल मिस्त्री ने किया है। अपनी कृति को इस रूप में देख जितना मुझे आनन्द-सुख है उतना ही मेरा मन इन सबके प्रति नमित-भाव लिए है।

दशहरा'७७

महेंद्र भानावत

—गणगौर माता—
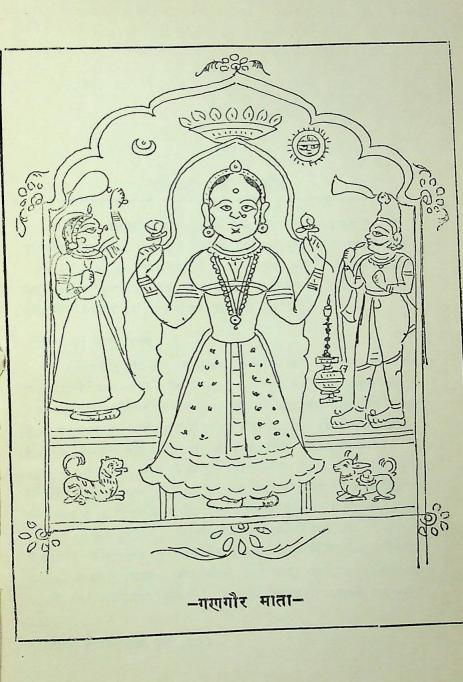
राजस्थान की गणगौर

राजस्थान रसवंती भूमि है। एक ऐसी भूमि जहां का लोकजीवन अपनी पारंपरिक विरासत का धनी है। विविध रंगों और रसों की इन्द्रधनुषी कला–छटाएँ यहाँ बारहमास चटखती रहती हैं। त्योहारों, उत्सवों, अनुरंजनों, मेलों-ठेलों की यहाँ बहार है। इस बहार में यहाँ का लोकमन रंगाबंगा रहता है। त्योहारों में गणगौर यहाँ का सर्वाधिक लोकप्रिय त्योहार है।

गणगौर-अर्थ और उद्भव :

गणगौर गण और गौर इन दो शब्दों से मिलकर बना है। गण का अर्थ शिव तथा गौर का अर्थ पार्वती से लिया जाता है। परन्तु लोकजीवन में गणगौर का अर्थ केवल पार्वती तक सीमित रह गया है। शिव की जगह यहाँ ईसर शब्द प्रचलित है। अत: अब गण—गौर नहीं होकर गणगौर-ईसर नाम ही सुनने को मिलता है। डॉ. श्याम परमार ने ईसर को शंकर का प्रतीक मानते हुए लिखा है कि मालवे में शंकरजी की मूर्ति को ईसरजी कहा जाता है। ईसर ईश्वर शब्द का अपभ्रंश है, यह असत्य नहीं। इस नाते ईश्वर को शंकर मानना इसलिये भी स्वाभाविक है कि मालवा के प्राचीन केन्द्र अवन्तिका के ईश्वर रूप राजा महाकाल (शंकर) ही माने गये हैं।[1] गणगौर सबंधी लोकगीतों तथा कथा किंवदंतियों में गणगौर के कई नाम सुनने को मिलते हैं। इन नामों में गौर, गिणगौर, गवरळ, गौरळ, गवरजा, गवर, गौरळ गैबरोबाई, गौरा, गऊर, गौरज्या, गवरादे, गवरी आदि नाम मुख्य हैं। गणगौर पूजा कब प्रारंभ हुई, इस संबंध

---

[1] **मालवी लोकसाहित्य, पृष्ठ १९७।**

में ठीक-ठीक कोई ज्ञातव्य नहीं मिलता परन्तु शिव-पार्वती की पूजा की परंपरा हमारे यहाँ अति प्राचीन काल से चली आ रही है।

विविध कथा–किंवदंतियाँ :

गणगौर के संबंध में जो विविध कथा–किंवदंतियाँ सुनने को मिलती हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) होली गणगौर रूप में :

हिरण्यकश्यप नाम का राजा था जो बड़ा नास्तिक था पर उसके प्रहलाद नाम का पुत्र बड़ा आस्तिक था। राजा प्रहलाद को फूटी आँख भी नहीं चाहता था। उसने उसे मरवा डालने के अनेक प्रयत्न किये पर सब विफल रहे। अंत में अपनी बहिन होलिका को यह कार्य सौंपा जो अपने साथ उसे लेकर अग्नि प्रवेश कर गई। इस चिता में बड़ी विचित्र घटना घटी कि जिस होलिका को अग्नि स्नान का वरदान था वह जल मरी और प्रहलाद बाल–बाल बच गया।

होलिका के मरने की खबर चारों ओर फैल गई। हिरण्यकश्यप का जीना दूभर हो गया। उधर होली के पति ईसर ने चढ़ाई कर दी। हिरण्यकश्यप घबराया। मंत्री, ज्योतिषी, तांत्रिक इकट्ठे हुए। सबने अपनी–अपनी अटकलों से होलिका को जीवत करने का भरसक प्रयत्न किया पर यह कार्य हुआ बालिकाओं द्वारा जिन्होंने होली की राख के पिंड बनाकर अपने गीत-मन्त्रों से उनकी पूजा प्रारंभ करदी। कहते हैं कि सातवें दिन से ही लड़कियों को यह लगा कि पिंडों में प्राण पड़ने शुरू हो गये हैं। इधर लड़कियों के घरों में धन–धान्य, सुख अनंद की बढ़ोतरी होनी प्रारम्भ हो गई तो स्वाभाविक था उनकी माताएँ भी उनके अनुष्ठान के साथ अधिक श्रद्धा–आस्था के साथ जुड़ गईं। पंद्रहवें दिन पूजा करनेवाली एक षोडशी को स्वप्न दिया कि तुम मुझे एक काठ–प्रतिमा बनाकर उसे अच्छे वस्त्र आभूषणों से अलंकृत कर देना। मैं गौरा के रूप में उसी में जीवित हो उठूंगी।

लड़कियों को तो कोई भी कौतुक भरी बात मिलनी चाहिये। स्वप्न वाली बात बड़ी जोर से घर–घर फैली। हर महिला परिवार को चमत्कार भी लगा। आस्था और उमड़ी तो सब ओर पूजाधाम प्रारंभ हो गई। यही होली गणगौर के रूप में सरजीवित होकर जहां महिलाओं की मंगल कल्याण तथा चिर-सुहाग देने वाली देवी बनी वहां लड़कियों में अच्छे वर तथा अच्छे घर की उन्हें स्वामिनी बनाने के रूप में पूजित हुई।

(२) पुलोमजा द्वारा गणगौर पूजा :

यह भी कहा जाता है कि एक बार पुलोमा नामक दैत्य की कन्या ने अपना मनोवांछित वर पाने के लिये श्री शंकर भगवान की पूजा की तब शंकर भगवान ने उससे कहा–'चैत्र शुक्ला तृतीया को अपनी सहेलियों सहित मौलसिरी के पुष्पों का हिंडोला बनाकर उसमें ईसर तथा गौरी को झुलाते हुए महोत्सव मनाओ। निस्सन्देह तुम्हें मनोवांछित फल प्राप्त होगा।' शिवजी की सलाह के अनुसार पुलोमजा ने वैदिक रीति से गणगौर की पूजा शुरू की। प्रतिदिन सवेरे जलाशय पर जाकर और दुर्वादल संचय कर तथा फूल लाकर वह गणगौरी की पूजन करने लगी। इधर उसके पिता पुलोमा का कालासुर नामक दैत्य से झगड़ा हो गया। पुलोमा ने उसका नाश करने के लिये इन्द्र से मदद मांगी। गणगौरी के पूजन के प्रभाव से इन्द्र द्वारा पुलोमा का शत्रु मारा गया। पुलोमा ने अपनी पुत्री का विवाह इन्द्र से कर दिया। कालान्तर में पार्वती ने भी शिव को पाने के लिये गणगौरी पूजन किया और बाद में जानकी ने भी राम को इसी पूजन के प्रभाव से प्राप्त किया।[1]

(३) गणगौर–एक रहस्यमय लड़की :

गणगौर पूजा के प्रचलन की एक कथा निमाड़ में इस प्रकार प्रचलित है— चैत महीना आ पहुँचा। कुंजों में आम बौराये और भोलीभाली ग्रामबालाएँ आम्रकुंज में फूलपाती खेलने जाने लगीं। छह से बारह वर्ष तक की आयु की लड़कियों के एक दल ने अनुभव किया कि फूलपाती खेलते समय एक लड़की उनके साथ रहती हैं। हँसती खेलती है और फिर न जाने कहाँ गायब हो जाती है। वह लड़की न उनके गाँव की थी न पास पड़ोस के किसी गाँव की और न ही उनमें से किसी की परिचित। एक दिन उनमें से एक साहसी कन्या ने फूलपाती का खेल समाप्त होते ही उसका हाथ पकड़ लिया। सबने उससे परिचय पूछा। लड़की का चेहरा चमचमा उठा। सच पूछा जाये तो वह हठ कर के, अमर आत्माओं के नियमों का उल्लंघन करके फूलपाती खेलने आई थी। जिस लड़की ने उसका हाथ पकड़ रखा था, उसके हाथ से बाह्य रूप में फिसल कर, अपने देवी रूप में कुछ दूर पर स्थित हो गई तथा उन लड़कियों को अभय देते हुए अपना वास्तविक परिचय दिया। साथ ही यह भी कहा–'हर साल चैत महीने में तुम फूलपाती खेलने आना। मैं भी तुम्हारे साथ खेलूंगी।'

[1] गुनगुनाती गाती गणगौर, शीला झुनझुनवाला, धर्मयुग, १७-३-६३, पृ० ३७।

इस पर लड़कियाँ जिद्द पकड़ गईं। 'देवी ! आप कृपा करके हमारे साथ गाँव चलिये और परिवारवालों को भी दर्शन दीजिये।' देवी ने कहा–'स्वर्ग में मेरे पति मेरी बाट जोह रहे होंगे, इसलिये इस समय मेरा यहाँ रुकना संभव नहीं है। यह भू–भाग कभी मेरा पितृगृह रहा है। इसलिये यदि तुम्हारे परिवार वाले, बेटी–दामाद के रूप में चैत महीने में हमारा आह्वान करें तो हम प्रतिवर्ष उपस्थित होंगे।' लड़कियों ने घर जाकर यह बात बताई और गणगौर पर्व आरंभ हुआ।[1]

(४) गौरीपूजा से कृष्ण का आगमन :

यह भी कहा जाता है कि श्रीकृष्ण जब द्वारिका से बाहर चले गये और शत्रुओं में गिरे रहने के कारण बहुत समय तक नहीं लौट सके तो सत्यभामादि ने मनौती के रूप में मिट्टी की प्रतिमा बनाकर गौरी की पूजा प्रारंभ की। इससे कृष्ण का आगमन हुआ फलतः इसी स्मृति में गौरी पूजा का प्रारंभ हो गया।

(५) गौरी पूजा से राम की लंका विजय :

कृष्ण के साथ-साथ गौरी-पूजा की घटना राम-जीवन से भी जोड़ी गई मिलती है। इसके अनुसार राम ने लंका विजय के पूर्व गौरी की पूजा कर विजयश्री प्राप्त करने का वरदान मांगा था। जब उन्हें यह श्री हासिल हो गई तो गौरी पूजा का प्रारम्भ हो गया।

(६) गणगौर उदयपुर की कन्या :

लोकजिव्हा पर गणगौर के संबंध में एक किस्सा यह भी प्रचलित है कि उदयपुर के किसी वीरमदास की गणगौर नामक एक सुन्दर कन्या थी।[2] यह वीरमदास राजघराने से संबंधित था। प्रत्येक राव रईस की निगाह परम सुंदरी गणगौर पर थी पर इसका लग्न बूंदी के ईसरसिंह के यहां भेजा। जब अन्य राव रईसों को यह बात मालूम हुई तो वे क्रुद्ध हो उठे और किसी प्रकार

---

[1] सोरठ सुंदरी गणगौर कौन थी ? अविनाश सरमंडल, धर्मयुग, २१-३-७६, पृष्ठ ९ तथा २१।

[2] इस संबंधी लड़कियों में प्रचलित एक गणगौर गीत की पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

उदियापुर से आई गणगौर
आय उतरी विरमादासजी री पोल
सुवागण राण्यां पूजल्यां ए गणगौर।

गणगौर को पाने के प्रयत्न में लग गये। इधर ईसरसिंह रातोंरात उदयपुर आकर गणगौर को भगा ले गया। इस बात का पता जब अन्यों को लगा तो वे ईसरसिंह के पीछे दौड़े। रास्ते में चबल का तेज प्रवाह पड़ा। ईसरसिंह ने आव देखा न ताव उसमें अपना घोड़ा छोड़ दिया। नदी का प्रवाह तीव्र होने से घोड़े सहित ईसर-गणगौर डूब मरे। ये ही गणगौर-ईसर सती-सता के रूप में गणगौर त्यौहार के रूप में पूजित हुए। एक किंवदंती यह भी है कि गणगौर कोई क्षत्रिय कन्या थी जो ईसरसिंह नामक वीर युवक से ब्याही गई। विवाह के सौलहवें दिन ईसरसिंह बाघ का शिकार खेलने गया जहाँ बाघ और ईसरसिंह दोनों मारे गये। यह सुन गणगौर ईसरसिंह के साथ सती हो गई तबसे दोनों की याद में उनकी काष्ठ प्रतिमाएँ निकालकर यह त्यौहार मनाया जाता है।

गणगौर का उद्‌भव–अर्थ कुछ भी रहा हो। आज तो यह गणगौर नारियों के अटल–अमर सुहाग की प्रतीक बनी हुई है। संज्या जहां लड़कियों के लिए लोकदेवी, पाहुनि, बहिन, गोठन, सखी, सहेली सब कुछ है वहां गणगौर इन लड़कियों के लिये केवल अच्छा वर–घर देनेवाली माता है। छोटी से छोटी लड़कियाँ भी यदि गणगौर पूजती हैं तो वे भी उसे देवी रूप में ही पूजती हैं परन्तु महिलाओं में जहां गणगौर सुहाग दायिनी है वहां वह उनकी षोडशी किशोरी कन्या रूपा भी है जिन्हें वह लड़की की तरह अंतिम दिन विदा करती हैं। यहाँ यह गणगौर उनकी माता नहीं होकर वे स्वयं ही उस गणगौर की माता बन जाती हैं। इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि गणगौर जब विदा हो जाती है तो पूजनेवालियों में वह अपना गणगौरत्व प्रतिष्ठित कर देती है इसलिये उसके अभाव में वे स्वयं अपने-अपने घरों की गणगौरें बन बैठती हैं। लोकमानस का जीवन–दर्शन कितना गूढ़, गहन और गरिमामय है इसमें गहरे पैठने की आवश्यकता है।

मनवांछित वर प्राप्ति का त्यौहार :

हमारे यहां बालिकाओं के कुछ त्यौहार–व्रतोत्सव ऐसे हैं जिनके संपूरण से उन्हें मनवांछित वर की प्राप्ति होती है। गणगौर भी इनमें से एक महत्वपूर्ण त्यौहार है। इस अवसर पर बालिकाओं द्वारा जो गीत गाये जाते हैं उनमें उनके भोले मन के सहज स्वर फूट पड़ते हैं। गणगौर माता से वे प्रार्थना करती हैं कि उन्हें अच्छा, सुशील, सुरूपवान, पुरुषार्थी और श्रेष्ठ वर प्राप्त हो। उन्हें ऐसा वर नहीं चाहिये जो अधिक खाऊ हो। सौलह रोटियां पकाये और सत्रह खा जाये और साग भरी पूरी हंडिया ही खाली करदे। उन्हें चाहिये सांवले रंग का

सांवलिया सरदार जो टेढ़ी–तिरछी पगड़ी बांधता हो।[1] मेड़ी बैठकर मद पीता हो। लीली घोड़ी की सवारी करता हो। जो कमर मोड़ घोड़े पर ठमकाई से चढ़ बैठता हो और मधरी–मधरी चाल निरखता चलता हो।[2] उन्हें ऐसा वर नहीं चाहिये जो रसोड़ादास हो। चूल्हे पर ही बैठा रहे। जो ठीक ढंग से खाना भी नहीं जानता हो। जो नौ नौ थाली राबड़ी पीता हो। हे माता! हमें भूलकर भी ऐसा वर मत देना।[3] उन्हें वर तो अच्छा चाहिये ही परन्तु वर के साथ-साथ उनके माता–पिता तथा भाई भौजाई भी उन्हें अच्छे चाहिये। जलधर के समान उदारमना बाबा तथा ममतामयी रजनीदेवी सी मां, कन्हैया सा भाई और राधा–रूक्मणि सी भौजाई चाहिये। बहनोई और सुहागिन बहन चाहिये। वीर काका और परिश्रमी काकी चाहिये। फूंस उड़ाता ऊट–चढ़ता, पून पिछोकड़ फूफा तथा हंडिया धोती, मांडे पोती भुआ चाहिये। अन्न, धन, लाछर लछमी चाहिये।[4]

---

1 सोलह पोवूं सतरह खाय
हांडी रो हंडवाल
ओ बार टालो माता गौरजा ए
म्हैं तनैं पूजण आय।
डोढ़ी बांधे पागड़ी
ए सांवलिया सिरदार
ओ वर देई माता गौरजा
म्हैं तनैं पूजण आय॥

2 मेड़ी बैठ्यो मद पीवै
लीली घोड़ी रो असवार
टेढ़ी बांधे पागड़ी
मधरी चालै चाल
कड़मोड घोड़े चढै
चाल निरखतो जाय
ओ वर देसी माता गौरल
म्हैं थांनैं पूजण आय॥

3 चूल्हा केरो चारणणो
ओ हांडी को हमार
नो थाली पीवे राबड़ी
सोलै रोटी खाय
ओ वर टाली माता गवरल
म्हैं थांनैं पूजण आय॥

4 (क) जलहर जामी बाबुल मांगां
रातादेई मायड़
मांगां ए मांगां अनधन लाछर लिछमी
पून पिछोकड़ फूफो मांगां
मांडा पोवण भूवा
कानकंवर सो वीरो मांगां रोआंसी भोजाई।

(ख) वड़ो दुमाल्यो बाबुल मांगां
रातांदेई मां
फूंस उड़ावन फूफो मांगां
हांडा धोवण भुवा।

(ग) मांगां ए म्हें अन धन लाछोर लछमी
कान कंवर सो वीरो मांगां
राई सी भोजाई (रुकमण सी भोजाई)
ऊंट चढ़तो बेनोई मांगां चूड़ले हाली बैनड़।

वर प्राप्ति के लिये जिस लड़की ने गवरल पूजा साधी वह गणगौर को कभी विस्मृत नहीं कर पाती है। विवाह के ऐसे समय जब बाहर दूल्हा तोरण पर आया हुआ है बनड़ी गणगौर का स्मरण कर पहले उसे पूजती है और उससे वरदान प्राप्त कर ही वर-वरण को जाती है। इस संबंधी यह गीत भी हमें सुनने को मिलता है—

राइवर डोलरह्या तोरण पर
बनड़ी पूज रही गणगौर।

यह गौरीपूजन राम के गले में वरमाला डालने से पूर्व अपनी माता के आदेश से सीता ने भी पुष्पवाटिका में जाकर किया था। गोस्वामी तुलसीदास ने इसका बड़ा ही सरस वर्णन रामचरित मानस में किया है। एक लोकगीत में भी इसका बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है—

अबका पूजण ने आई सिया बाग में
पूजण ने पुजापो लाई थाल लाई हाथ में
छाने छाने निरखूं म्हारे दीनदयाल ने
ओ ही वर दीजै माता अमर सुहाग रो
अबका पूजण ने आई सिया बाग में।।

इसे मनाने के लिये पूरे सौलह ही दिन लड़कियाँ प्रसन्नचित्त रहती हैं। किसी से बोलचाल नहीं हो जाय इसका पूरा-पूरा ध्यान रखती हैं। इसके पीछे यह धारणा रही है कि यदि कोई लड़की इसे रूठकर मनाती है तो उसे रूठा पति मिलता है[1] अतः लड़कियाँ ऐसा कोई काम नहीं करतीं जिससे उन्हें रूठना,

---

1 इस संबंधी एक गीत भी प्रचलित है —

जो तू पूजसी रूसी टूसी तो रूस्यो टूस्यो वर आयसी राज
जो तू पूजसी नीमा री डाली तो नीम निमोलो वर आयसी राज
जो तू पूजसी धनिये री डाली तो धन धन करतो वर आयसी राज
जो तू पूजसी दुरबारी डाली तो हर्यो हर्यो वर आयसी राज

यदि तुम रूठी हुई पूजा करोगी तो रूठातूठा वर मिलेगा। यदि नीम की डाली से पूजा करोगी तो नीम की निमोली सा कडुवा वर मिलेगा। यदि धनिये की डाली से पूजा करोगी तो धन धन करता वर मिलेगा और यदि दूब डाली से पूजा करोगी तो दूब सा हराभरा वर मिलेगा। इसीलिये लड़कियाँ गणगौर माता की पूजा दुर्वा से करती हैं।

नाराज होना अथवा लड़ना झगड़ना पड़े। लड़कियों के माता पिता तथा पास पड़ोस वाले भी इसका पूरा-पूरा ख़याल रखते हैं।

बालिकाओं का पिंड पूजन :

होली-दहन के दूसरे दिन से ही बालिकाएँ होली के राख के सौलह पिंड बनाकर पूरे सौलह् दिन तक गणगौर की पूजा प्रारम्भ कर देती हैं। इन पिंडों के साथ कहीं-कहीं पांच लड्डू बनाये जाते हैं जो पांच देव–ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, सरस्वती के प्रतीक समझे जाते हैं। इनकी पूजा शीतलाष्टमी तक की जाती है। प्रातः होते ही अपने-अपने पड़ौस की लड़कियाँ मिलकर बाग-बगीचा तथा बाड़ी में फूल, पत्ती तथा दूब लेने जाती हैं। बाड़ी वाले को–'बाड़ी वाला बाड़ी खोल, बाड़ी की किंवाड़ी खोल' कह कर बड़े सवेरे जगाती हैं। बाड़ी वाला उठकर किंवाड़ खोलने से पहले जब उनसे पूछता है कि "तुम किनकी बेटी हो ? दूब लेने के लिये कौन-कौन आई हो ?" तो वे सहज ही अपनी स्वर लहरी में बोल पड़ती हैं–"म्हैं बिरमाजी री बेटी हां, ईसरजी की भैणाळ हां, रोवां आई दूब के।" इस अवसर पर कई सुन्दर गीत बालिकाओं द्वारा गाये जाते हैं। यहाँ एक बहुत ही लोकप्रिय गीत दिया जा रहा है जिसे मैंने उदयपुर के गुलाब बाग में गणगौर के दिनों में आज से कोई पन्द्रह वर्ष पूर्व दूरबा लेने आई मेघवालों की नन्हीं–नन्हीं लड़कियों से सुना था—

बोल ए रजवाड़ा री मालण कई-कई सौदो लाई राज
गेंदा लाई गजरा लाई सेवरला गूंथ लाई राज
सेवरला री लड़ियां म्हारा फूलवनां ने सोवे राज।।
बोल ए रजवाड़ा री कुमारण कई-कई सौदो लाई राज
कलस लाई कूण्डा लाई जवारिया ले आई राज
जवारिया री सोभा म्हारा आंगणियां ने सोवे राज ।।
बोल ए रजवाड़ा री सोनण कई-कई सौदो लाई राज
कंठी लाई डोरा लाई गोपां लेने आई राज
कंठी डोरा गोपां म्हारे लाल वनां ने सोवे राज।
बोल ए रजवाड़ा री तमोलण कई–कई सौदो लाई राज
पान लाई सोपारी लाई लौंग इलायची लाई राज
पान सुपारी लौंग इलायची फूल बना ने सोवे राज ।।

दूरबा और पुष्प–चयन के पश्चात लड़कियां पूजा का थाल सजाती हैं,

जिसमें कंकू, चावल, गेहूं, जौ, मकई तथा फूल-पत्तियां आदि होती हैं।[1] होलीथड़े जाकर कंकू का सात्विक कर लड्डू के कंकू आदि छांटने का रस्म पूरा कर उनके टीले टपके किये जाते हैं। अनाज के दानों, पिंडियों तथा फूल पत्तियों आदि को होलीथड़े रखकर अपने दोनों हाथों में दूब–फूल चूंटती हुई जो गीत गाती हैं उनमें उनकी मनोकामना, श्रद्धा, भक्ति, विश्वास एवं निष्ठा का प्रबल परिचय मिलता है। दो-एक गीत द्रष्टव्य हैं—

(१)

ईसर पूजूं पारपती जी
म्हें पूजूं भाई आलालीला
गोर दे सोना रा टीला
टीला दे टपका दे राणी
बरत करे गोरा दे राणी
करता करता आसग्या मासग्या
थारे खातर लाडू लाया
लाडू ले वीरा ने दीधा
वीरा ले मने साड़ी दीधी

---

[1] इस संबंध में रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत लिखती हैं—
इन दिनों गुलाब के फूल खिलते हैं। पलास के पुष्पों से बनराजि रंगीन हो उठती है। सेवंती और चंपा के फूल अपनी सुगंधी बिखेरते हैं। कड़ुवा नीम भी अपनी कड़वी मंजरियों की मीठी सुगंधी से वायु को शीतल एवं सुगंधित कर देता है। अविवाहिताएँ फूल तोड़ती हैं, खेलती हैं, पानी से लबालब भरे सरोवरों में उनके किनारों पर बने छज्जेवाले गोखड़ों के प्रतिबिम्ब को देखती हैं। इस सौंदर्य सुषमा में अपने आप को भूलकर वे गा उठती हैं—

ऊंचा राणाजी थांरा गोखड़ा रे लोल
नीचा पीछोला री पाल व्हालाजी
अठीने उदियाणो वठीने जोधाणो
बीच में देसूरी री नाल व्हालाजी
व्हालो लागे राणाजी रो देसड़ो रे लोल
किम कर जावूं रे परदेश व्हालाजी।

—मरुभारती जुलाई '६४ का अंक

साड़ी में सिंघोड़ो
वाड़ी में बिजौरो
राण्यां पूजे राज में
म्हें पूजूं एवात में
एवा एवा कीड़ी दे
कीड़ी थारी जात है
जात बड़ी गुजरात है
गुजरात थारो पाणी आयो
देदे खूंट्यां ताणीं आयो
आकड़ा री डाली
गुलाब रो फूल
एक दो तीन चार पांच छ
सात आठ नौ दस ग्यारा बारा
तेरा चवदा पन्दरा सोला
सोलाई ईसर जी गोरागट्ट ।

(२)

ईसरजी ने पारपतीजी दोई गोट्यां गोठ करे
जठे भगुड्यां घूटे
जठे पान फूलां री घमच्यां उड़े
जठे दोई बामण री बेट्यां सेवा करे
जठे दोई राजा री बेट्यां चंदण घिसे
जठे दोई सांप लड़े
जठे दोई बिछू लड़े
जठे दोई गोइरा लड़े ।

इन गीतों में गणगौर के साथ बालिकाओं का सहज सवाल-जवाब भी उठ खड़ा होता है। गणगौर द्वारा बालिकाओं से यह पूछने पर—'तुम मुझसे क्या चाहती हो ?' बालिकाएं अपनी तुरत बुद्धि के साथ बोल पड़ती हैं—"हमें अन्न धन्न रिद्धि सिद्धि चाहिये। बादल सा पिता और रजनी (देवी) सी माता चाहिये। कान्ह कुंवर जैसा भैया और छोटी सी भाभी चाहिये। ऊँट पर चढ़ा बहनोई और चुड़लेवाली बहिन चाहिये।"

जगल तथा बाग बगीचों से कन्याएँ अपने लोटों में जब फूल दूब लेकर लौटती हैं तब का दृश्य बड़ा ही सुहावना लगता है। छोटी-छोटी लड़कियाँ
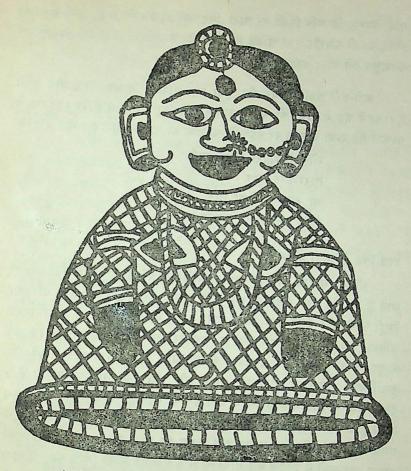
औरतों द्वारा पूजी जाने वाली सुहागदात्री माटी की गणगौर

जहाँ अपने सिर पर एक-एक लोठा-लोटिया रखती हैं वहाँ बड़ी-बड़ी लड़किया पांच-पांच सात-सात की संख्या में चूड़ा उतार लोटे रखती हैं। ये लोटे अत्यंत कला पूर्ण होते हैं। ओढ़ी सजी लड़कियाँ जब झुंड के झुंड रूप में गाती हुई निकलती हैं तो सारा आकाश इनके मधुर मोहक गीतों से गूंजित हो उठता है इस समय जोधपुर का गिरदीकोट तो ऐसा लगता है जैसे लोटियों का मेला जुड़ गया हो। लोटे लिये लड़कियाँ जब अपनी-अपनी जोड़ी की लड़की के साथ चलती हैं तो वे आपस में हंसी मजाक करती रहती हैं पर अपने सिर को वे इस ढंग से अनुशासित रखती हैं कि वह इधर-उधर होने पर भी लोटों को नहीं गिरा पाता है। लड़कियाँ भी इस बात का पूरा ध्यान रखती हैं कि उनके लोटे गिरने नहीं

पायें कारण कि यदि किसी का लोटा गिर गया तो उसकी मजाक तो होगी सो होगी, उसकी गणगौर पूजा खंडित हुई समझी जायगी। यों लोटों का गिरना अपशकुन भी माना जाता है।

कहीं-कहीं लड़कियाँ गणगौर पूजा पर खींपोली नामक प्रसिद्ध गीत गाती हैं। इसमें अंत में राजा की जगह स्थानीय राजा का नाम लेती हैं पर स्वतंत्रता के पश्चात मैंने राजा के नाम पर नेहरूजी, गांधीजी का नाम भी सुना है। गीत पक्ति है-

खींपोली म्हारी खींपा छाई
तारा छाई रात
आ नगरी नारेळां छाई
राजा नेहरू रा परताप।

राख पिंड से माटी प्रतिमाएँ :

शीतला अष्टमी को जाते-जाते राख के पिंड प्रतिमा के रूप में विकसित हो जाते हैं। इस दिन लड़कियाँ कुम्भकार के वहां जाकर मिट्टी लाती हैं और उस मिट्टी से गणगौर ईसर तथा कानां रोवां अथवा मालिन, ढोला की सुन्दर-सुन्दर प्रतिमाएँ बनाती हैं। लोकगीतों के अनुसार ईसर (दास) विरमादत्त (ब्रह्मा) के पुत्र, कानां (कन्हीराम) ईसरदास के छोटे भाई, रोवां उनकी छोटी बहिन और कुमारिकाएँ अपने को गौरी की बहिन और ईसर की सालियाँ मानती हैं। इनकी पूजा के लिये वे आसपास के बाग बगीचों में नहीं जाकर कुछ दूर निकल जाती हैं और हरी हरी डालियाँ लाकर पूजा अर्चना करती हैं। मारवाड़ में प्राय: फोग की डालियों द्वारा यह पूजा संपन्न की जाती है। पूजा के लिये कुओं अथवा जलाशयों से निर्मल जल लाया जाता है और एक थाली (कांसे की) में पानी डालकर नदी-जलाशय का रूप स्थापित किया जाता है। पूजा करनेवाली अपने दायें हाथ में टहनियाँ पत्तियाँ लिये थाली की मुंडेर थामे रहती हैं और उसे गोलाकार घुमाती हुई गीत गाती हैं [1] और तदनन्तर थाली को औंधी कर देती हैं। इसी दिन से प्रति संध्या को गौर का बंदोला निकाला जाता है इसमें बारी-

---

[1] गीत यह है—

ऐल खेल नंदी वेवै
ओ पाणी कठे जासी जी ?
आधो जासी अलियां गलियाँ
आधो ईसर न्हासी जी।

बारी से लड़कियाँ अपने-अपने घरों से गेहूं, मकई, बाजरे अथवा चने की घूघरी लाती हैं और आपस में मिल बैठकर खाती गाती हैं। इसीदिन घरों में बालिकाएँ–किशोरियाँ जौ गेहूं बोकर जवारों के रूप में अपने हाथों से फसल का रोपण करती हैं।

उदयपुर की गणगौर :

चैत्र शुक्ला ३ से ६ तक गणगौर त्यौहार मनाया जाता है। मेवाड़ में यह त्यौहार उदयपुर, नाथद्वारा तथा गोगुन्दा में विशेष रगोल्लास के साथ मनाया जाता है। उदयपुर की गणगौर की विशेषता महाराजाओं की भव्य एवं कलात्मक सवारी के कारण है। इसे देखने के लिए दूर-दूर तक के लोग उमड़ पड़ते थे। यह सवारी प्रतिदिन सायंकाल चारों दिन निकाली जाती। इसमें सबसे आगे निसांण का हाथी रहता जिस पर एक व्यक्ति निसांण लिए बैठा रहता। यह निसांण पताका के रूप में सुनहरी रंग की जरी (आसावरी) का होता जिस पर सफेद कपड़े के चाँद तथा सूरज लगे होते। इस हाथी के पीछे बैंडवाले रहते। बैंडबाजक अपने बैंड पर गणगौर गीतों की बड़ी कर्णप्रिय धुनें बजाते हुए चलते थे।

इनके पीछे राइफलें लिये पलटन होती थी, पलटनिये पैदल खाकी तथा लाल वर्दी में रहते थे। इनके बाद दरबार के हाजरवासी मेहता धाबाई तथा मरजीन्दा लोग रहते थे। ये हाथी पर सवार होते। प्रत्येक हाथी पर फारकी कसी हुई होती जिसमें चार-चार व्यक्ति बैठे रहते। इन हाथियों की संख्या आठ-दस तक होती। इन हाथियों के पीछे घोड़े होते जिन पर राजकीय प्रतिष्ठित लोग-मेहता, मुसद्दी, दीवान, उमराव, चारण आदि रहते। इनके पीछे तीन हाथी होते जो सोने चांदी के होदों तथा बेशकीमती जेवरों से सजे होते। इनमें एक हाथी एकलिंगजी की सवारी का होता जिस पर सोने के नाग का फण सुशोभित रहता। इन हाथियों के पीछे रणकंकण बाजे वाले चलते। यह बाजा भालेनुमा वाद्य होता जिस पर लगे घूघरों से छमछम की मधुर ध्वनि निसृत होती। रणकंकणिये तीस के करीब होते जिनमें तीन-चार बांसुरी बजाने वाले भी होते। इन्हीं रणकंकणियों के साथ गोटेवाले, छड़ीदार तथा बंदूकधारी होते। ठीक इनके साथ दरबार का हाथी चलता जिस पर दरबार शाही पोशाक में बिराजे हुए रहते। इनके आगे महावत तथा पीछे कोई एक बत्तीसी जागीरदार चँवर ढोलते रहते। यह हाथी बैंड की धुन के साथ-साथ विशिष्ट प्रकार के नृत्य-कदम भरता जिससे इसके चारों पाँवों में बँधे बड़े-बड़े घुंघरुओं की ध्वनि अपना कलात्मक सौंदर्य बिखेरती चलती। महाराणा कीमती जेवर से सजे होते। उनकी अकेली अमरशाही

पाग ही लाख-लाख दो-दो लाख के जेवरों से जड़ी रहती। पगड़ी के अतिरिक्त जामा और डोड़ी तथा हीरे मोतियों के आभूषण होते। चँवर के साथ छत्र, छहांगीर, किरविया, अडाणी, छवा आदि लवाजिमा भी होता।

गोटे छड़ी वालों के साथ वीरतापूर्ण दोहे गाते हुए ढोली-गंधर्व चलते। यहां कुछ दोहे द्रष्टव्य हैं जो सत्तर वर्षीय देवीलाल जी गंधर्व से लिखे गये हैं—

भीम पधार्या गोखड़े जाणेक ऊगो भांण।
क्रोड़ जुगां रा जस करो दन दूलै दीवांण।।
पातल पाग परवांण सांची हीर सांगा तणी।
रही सदा लग रांण अकबर सूं ऊची अणी।।
ठग अकबर दिल ठाण अग अग झगड़े आथड़े
मग मग पाड़े मांण पग पग रांण प्रतापसी।।
कुण हाथी चेहरी करे भरियो चेहरी भेर।
गग गेहरी रा गाजणा सोने री सगतेस।।
तुरक कैसी मुख पतो अण तन सूं एकलिंग।
ऊगो ज्यांही ऊगसी प्राची बीच पतंग।।
अकबरियो इकबार दागल की सारी दुनि।
अण दागल असवार रहियो रांण प्रतापसी।।
सजन बड़ो सरूप अवतारी राजो अचल।
रांण तिहारो रूप नैण न धापे निरखता।।
संभू रांण सरूप रा भलहल उगा भांण।
चत्रधारी सर सेवरो अन्द्र जेसो एहलाण।।
तू गिर जिंगरा तापीयो भूल्यो नांह भजन्न।
एलम सारा एकठा सीख्यो कठे सजन्न।।
करम खुले दरसण कियां सब सुख मिले संसार।
भूप सजनसी भाळजे यो सिव रो अवतार।।

महाराणा के हाथी के पीछे खाकी वर्दी में रिसाले के घुड़सवार रहते। ये सवार वंदूकधारी होते। इनके पीछे सोने चांदी के कीमती जेवर व जरी का सामान पहने घोड़े चलते। मुख्य घोड़ों के दोनों तरफ चँवर तथा मोरछल होते हुए निकलते। घोड़ों के साथ चलनेवाले सईस भी विशिष्ट पोशाक में इनकी लगाम थामे बढ़ते। इनके पीछे आखरी में नगारे का हाथी रहता। इसके ऊपर दोनों ओर नगारे रहते जिन्हें नगारची वजाता रहता। नगारची के पीछे दो-तीन शह-

नाई बजाने वाले भी बैंठे रहते। शहनाई और नगारे के मिले-जुले स्वर पूरे वर्ष भर तक दर्शकों के कानों में छाये रहते। गणगौर की ऐसी सवारी और उफनता हुआ उल्लसित जनसमूह उदयपुर के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता।

नाव का सवारी :

यह सवारी गणगौरघाट (त्रिपोलिया) जाकर पूरी हो जाती। यहां महाराणा नौका मे सवार होते। इस नौका में चार खंभों वाली कलात्मक छतरी होती जिसमें एक सिंहासन होता। यह सिंहासन बहुत ही बेहतरीन ढंग से सजाया जाता था। महाराणा इसी सिंहासन पर बिराजते। महाराणा के अतिरिक्त इस जंगी नाव में अन्य सरदार, सामंत, उमराव भी होते जो अपने पद-प्रतिष्ठा के अनुसार जगह पाते, बैंठते अथवा खड़े रहते। नाव में चढ़नेवालों की संख्या लगभग सवा सौ तक पहुँच जाती। घूमर लेनेवाली रंडियां भी इसी नाव में सवार होतीं।

इसी नाव के साथ एक नाव और जोड़ दी जाती जो सतरहवें उमराव की होती थी। यह नाव बिना छतरी के होती थी। दोनों नावों की रूप-सज्जा देखते ही बनती थी। चार दिन की सवारी में चारों दिन महाराणा के मनमाफिक रंग की पोशाकें तथा तदनुरूप सजावट होती। जागीरदार, सरदार, उमराव से लेकर नावें तथा नावड्ये तक उसी रंग विशेष में रंगे पंगे जाते। इन दोनों नावों के पीछे एक छोटी नाव और होती जो डूडा कहलाती। इसमें नगारे तथा शहनाई वादक बैठ कर अपना वादन देते। जब कभी महारानी साहिबा को सवारी का ठाठ देखना होता तो उनके लिए कमरानुमा पड़देवाली एक छोटी सी नाव छोड़ दी जाती जिसमें राणीजी अपनी दासियों सहित बिराजमान रहती।

महाराणा के नौका पर सवार होने के पश्चात् महलों से गणगौर की भव्य सवारी निकाली जाती। इसमें वस्त्राभूषणों से गणगौर माता को सजाया जाता। ये वस्त्राभूषण अत्यन्त कीमती होते। गणगौर को भोयण अपने सिर पर सिंहासन सहित उठाये चलती जिसके दोनों ओर दो दासियां चँवर ढोलती रहतीं। इनके पीछे अन्य दासियों-डाबड़ियों-धाबाइणियों के झुण्ड होते जो गणगौर गीतों से एक विशेष मोहक समा बांध देते। इनके पीछे महाराणा की सवारी की ही भांति फौज, पलटन, हाथी, घोड़े तथा पैदल पंडित अहलकार आदि चलते। गणगौर घाट पर गणगौर माता का पंडित-ज्योतिषियों द्वारा विधिवत पूजन होता जहां महाराणा नाव से ही उठ कर माता को प्रणाम करते। यहीं दासियां गणगौर के
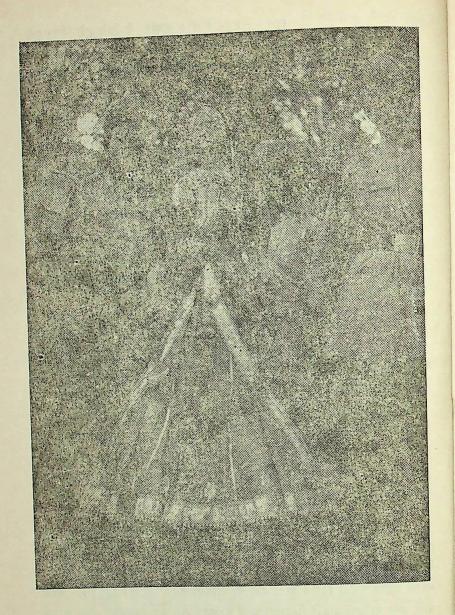
उदयपुर की राज गणगौर : सुरक्षा का सुप्रबन्ध

दोनों ओर खड़ी होकर वंदना के रूप में झुकती हुई लूहरें गातीं। इसके बाद उस गणगौर की यह सवारी महलों को लौट जाती।

तदुपरांत महाराणा की नाव गणगौरघाट से चल कर नावघाट तक जाती। यहां से घूम-फिरकर पुनः नाव गणगौरघाट आ जाती जहां रंडियां नाव से उतरकर गणगौर गीतों के साथ घूमरें लेतीं। घूमर के बाद पुनः वे नाव में सवार हो जातीं। यहां से नाव मोहनमंदिर की ओर बढ़ती। मंदिर के पास पहुंचते ही आतिशबाजी छोड़ी जाती जिसमें गुब्बारों का विशेष आकर्षण रहता।

नाव की यह सवारी महाराणा सज्जनसिंह ने प्रारम्भ की। इस विषयक एक गीत गणगौर गीतों के साथ आज भी सुनने को मिलता है जो यहां अत्यंत ही लोकप्रिय है—

हेली नाव री असवारी सजन रांण आवे छै
सजन रांण आवे छै हिन्दुवां भांण आवे छै
धीरे धीरे नाव चालै इन्दु गाजै छै
पीछोला री पाल मोरी घूमर आवे छै।

गणगौर की इस सवारी में माछलेमगरे पर तीन बार तोपें दागी जातीं जो अलग-अलग संकेतों की सूचक होतीं। पहली तोप महाराणा महलों से प्रस्थान करते तब, दूसरी महाराणा नाव में विराजते तब तथा तीसरी सवारी के बाद महाराणा महलों में पधारते तब दागी जाती। हजारों की संख्या में लोग इस सवारी को देखने के लिए उमड़ पड़ते। सभी लोगों में एक विशेष प्रकार की चहल पहल तथा आनन्द-उछब देखने को मिलता। प्रायः दोपहर की कड़ी धूप से ही लोग इसे देखने के लिए सड़क के आजु-बाजु तथा मकानों की छतों पर बैठने-खड़े रहने के लिए अपना स्थान सुरक्षित कर लेते।

गणगौर के इस सुप्रसिद्ध सवारी-मेले को देखने के लिए महाकवि पद्माकर भी एकबार उदयपुर आये तब यहां महाराणा भीमसिंह का शासन था। इस मेले पर गणगौर की विशेष छटा देख कवि पद्माकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। फलस्वरूप उन्होंने कुछ छंदों की रचना की जिसमें से एक छन्द यहां द्रष्टव्य है—

द्यौस गनगौर के सु गिरिजा गुसाइन की
छाई उदैपुर में बधाई ठौर–ठौर है।
देखो भीम राना या तमासो ताकिवे के लिए
माची आसमान में बिमानन की भौर है।
कहै 'पद्माकर' त्यों धाखे में उमा के गज
गौनिन की गोद में गजानन की दौर है।

पारावार हेला महा मेला में महेस पूछै
गौरन में कौन सी हमारी गनगौर है ?[1]

महाराणा की गणगौर की यह सवारी जैसे अब स्वप्नवत् हो गई। त्यौहार अब भी प्रचलित है। छोटी-मोटी गणगौरें अब भी निकलती हैं। गणगौरघाट अब भी है पर वह शाही ठाठ और चहलकदमी नहीं। वे नावें और वे रंग रोशनियाँ नहीं। जनता उमड़ने को तो आज भी उमड़ती है मगर वह उछाह नहीं। सब सूना-सूना है। बड़े-बूढ़े शिलालेख की भांति गणगौर के शाही सौंदर्य और उससे उपजे आत्मसुख का स्वाद तो देते हैं मगर उसकी वर्तमानिक खडहरीली स्थिति की आत्मपीड़ा को परोसे बिना चैन नहीं पाते।

नाथद्वारा की गणगौर :

नाथद्वारा में किसी समय लगातार सात दिन तक गणगौर की सवारी पूरे राजसी ठाठबाट के साथ निकलती थी। सातों दिन सात रंगों में सवारी का प्रबन्ध होता। ईसर तथा गणगौर को नित्य प्रति नये रंग की पोशाक धारण कराई जातीं। जुलूसवालों के भी उसी रंग के वस्त्र होते और तो और हाथी की झूलें तक उसी रंग की होतीं। शहर में जगह-जगह वस्त्र रंगने लिये रंगरेजों का प्रबन्ध रहता। नगर निवासियों तथा बाहर से आनेवाले दर्शनार्थियों के वस्त्र रंगरेज उसी समय निशुल्क रंग देते। नीले, पीले, लाल, केशरिया, कसूमल, काजलिया आदि के एक ही रंग में रंगे उमड़ते जन समुदाय का दृश्य बड़ा ही मुग्धकारी होता था। सभी रंगरेज अपने-अपने रंगों की कुंडिया भर बाजार में बैठ जाते। बाहर से आनेवाला अपनी संपूर्ण पोशाक न भी रंगाता तो भी कम से कम अपनी पगड़ी, गले का रुमाल और कमर बंधा तो रगरेज को रंगने के लिए दे ही देता। रंगरेज को रंगाई का सारा खर्च नाथद्वारा ठिकाने की ओर से दिया जाता था। काजलिया रंग आखरी रंग होता था। यह इस बात का सूचक था कि कल गणगौर का विसर्जन कर दिया जायगा। यों काले रंग को वैधव्य का रंग माना जाता है परन्तु इसकी पोशाक के गोटे किनारी लगाने के बाद सधवाएँ भी पहन सकती हैं। यह रंग मेवाड़ में ही विशेष चलता है।

अब यहां यह त्यौहार चार दिन तक मनाया जाता है। प्रथम दिन मंदिर से गणगौर की भव्य सवारी निकाली जाती है। यह त्यौहार चूंदड़ी गणगौर के

---

[1] लाला भगवानदीन द्वारा संपादित 'हिम्मत बहादुर विरूदावली' की भूमिका, पृष्ठ १२।
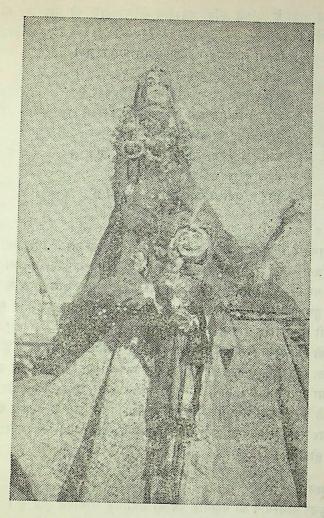
गोगुन्दा–मेले में गणगौर–ईसर : सहज सौंदर्य के धनी

नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे दिन की गणगौर गुलाबी, तीसरे दिन की हरी तथा चौथे दिन की गणगौर कजली के नाम से मशहूर है। प्रथम तीन दिन बनास के किनारे तथा अन्तिम चौथे दिन श्रीनाथजी के मोती महल में मेले का आयोजन होता है जिसमें राजस्थानी रमणियों के गणगौर विषयक विविध गीत तथा घूमर नृत्य की छटा देखते ही बनती है। पुरुष भी इन दिनों नाना रंगों की पगड़ियां धारण करते हैं।

ब्रज भाषा के प्रसिद्ध कवि घनश्याम ने नाथद्वारे की गणगौर का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

दिल्ली का दशहरा तीज पुंगल प्रमान जान
बीकानेर सावन जनाऊ गुन भारे की।
कामणी घनश्याम प्यारे मेदपाट उदयपुर
रूप की निधान देखी नैन रतनारे की।
होली ब्रजहु की दीपमालिका ममोई मध्य
कलाकन्द जैपुर जताऊ गुन भारे की।
गजब गुप्तेश्वर कपर्दी कांकरोली कीजे
और है अनोखी गणगौर नाथद्वारे की ।।

गोगुन्दा की गणगौर :

नाथद्वारे की तरह गोगुन्दा की गणगौर भी अच्छी गणगौरों में मानी जाती है। स्वतंत्रता के पूर्व यहां गणगौर का बड़ा अच्छा जलसा मनाया जाता था। तब यहाँ की गणगौर बड़ी नामी थी। आजादी के बाद यह उत्सव मेले के रूप में परिणत हुआ। अब यहां तीन दिन तक अच्छा मेला भरता है जिसमें मुख्यत: आदिवासी लोग शरीक होते हैं। यह मेला रात को अधिक जमता है जिसमें आदिवासी स्त्री–पुरुष के दल के दल नाचते–गाते मदमाते देखे जा सकते हैं। ये लोग प्रातः होते–होते अपने काम को निकल पड़ते हैं और संध्या–रात्रि को पुनः मेले में आ जमा होते हैं। तीनों दिन यहां विशेष जुलूस के रूप में गणगौर–ईसर लाये जाते हैं। आम मेलार्थी इन्हें देखने के लिए मचल पड़ते हैं। कुछ देर तक चबूतरे पर रखने के पश्चात इन्हें भोयणियां अपने सिर पर लेकर नचाती हुई प्रमुदित होती हैं।

घूमर नृत्य :

घूमर राजस्थान का गणगौर पर्व का सर्वाधिक लोकप्रिय नृत्य है। इसमें औरतें घूमती हुई गोलाकार नाचती हैं। इसे नाचने के लिए विशिष्ट प्रकार के घाघरे पहने जाते हैं। ये घाघरे कई कलियों के, एक सौ आठ कलियों तक के, होते हैं जिनकी प्रत्येक कलियां विशिष्ट प्रकार का घेर लिये होती हैं। एक बार चारों ओर घूम जाने से यह घाघरा वृत्ताकार में फैल जाता है। इसी घाघरे से किया जाने वाला नृत्य घूमर नृत्य कहलाता है। राजस्थान में जयपुर, कोटा, बूंदी, जैसलमेर, प्रतापगढ़ तथ उदयपुर की घूमरें बड़ी नामी रही हैं। इन घूघरों की अपनी अलहदा शैलियाँ हैं। इनके साथ के गीत भी बड़े मधुर तथा मोहक होते हैं। कुछ बहु प्रचलित गीत इस प्रकार हैं–

(१) म्हारी घूमर छै नखराली ए मां (२) कागज भरियो कूंपलो कोई पड्यो पलंग अधबीच (३) लालर लेदो रे बादीला म्हानै हरिया डावर की (४) सागर पांणी कैसे जाऊं सा नजर लग जाय (५) भरलावो पाणी सगर रो (६) रगड़ रगड़ पग धोवती श्रो रसिया (७) काले रंग चूंदड़ी लेदे रे बालमवा (८) काली चूंदड़ ऊपर बालमा बोत राजी (९) बादीला म्हानै गजरो लेदो सा (१०) आई छै रंगीली गणगौर आलीजा म्हारे (११) म्हैं तो भूली हो बादीला आपरी सेजां मोत्यां रो गजरो भूली रा (१२) गणगौर्यां म्हारा राज आलीजा ने मनास्यां रंग रा म्हेल में (१३) हेली नाव री असवारी सजनराण आवे छै।

आजादी के बाद घूमर नृत्य ने अपनी कंचुकी छोड़ एक विशिष्ट दायरा प्राप्त किया। अब गणतंत्र दिवस के राजकीय समारोहों में जगह-जगह सैंकड़ों विद्यार्थियों को इसने अपने नृत्य में पिरोया है। भारतीय लोक कला मंडल के विशिष्ट प्रयत्नों ने इस घूमर को दिल्ली के आम खास समारोहों की शोभा बना दी है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसके बढ़ाव को थोड़ा फैलाव फूलाव दिया जाय तो इसे एक राष्ट्रीय नृत्य के रूप में प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

लाखा फूलाणी :

गणगौर विसर्जन के दिन अन्तःपुर में गौरी के सम्मुख राज-परिवार की महिलाएँ पूजा के साथ लाखा फूलाणी गीत गाती हैं। इसकी कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

थारी तो गलियां में लाखो सांचरियो ए उमा
घर घर घालिया हिंगलाट
ए लाखो फूलाणी सुन्दर लेरियो ए उमा
थां छोटा लाखोजी मोटा चोवटिया ए उमा
म्हारी छोटी गेंद गुलाल
ए लाखो फूलाणी सुन्दर लेरियो ए उमा

नथमल :

लाखा फूलाणी के साथ-साथ नथमल नामक गीत भी गाया जाता है पर इसके संबंध में कोई इतिवृत्त नहीं मिलता। रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने इस गीत की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार दी हैं—

नथमलजी रो सेरियो सांकड़ो श्रो नथमल
न्हीं मावे म्हारी सहेलियां रो साथ
श्रो काजल ज्यूं घुल जाऊं थारै नैण

नथमलजी रो ढोलियो सांकड़ो ओ नथमल
न्हीं मावे म्हारा घाघरिया रो घेर
ओ मेंहदी ज्यूं रच जावूं थारे सैंए ।

गींदोली :

विसर्जन के दिन गींदोली तो लगभग सारे ही राजस्थान में गाई जाती है । रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत ने इसकी कथा इस प्रकार दी है— 'अहमदाबाद के बादशाह मेहमद बेग की कन्या गींदोली को महुवा के कुंवर जगमालजी लाये थे । जगमालजी की अनुपस्थिति में महुवा की तीज खेलती १४० कन्याओं को पाटण का सूबेदार हाथीखान पकड़ कर ले गया । जगमालजी को लौटने पर यह पता चला तो वे क्रोध और अपमान से जल उठे । उन्होंने प्रतिज्ञा की कि जब तक इसका बदला नहीं लेंगे वे हजामत नहीं बनायेंगे, धुले कपड़े नहीं पहनेंगे और सिर पर पगड़ी नहीं बांधेंगे ।

हाथीखान ने उन लड़कियों को अहमदाबाद के बादशाह को भेंट कर दिया था । गणगौर के पहले दिन अहमदाबाद के बादशाह की बेटी भी गणगौर देखने शहर के बाहर आई थी । जगमालजी के प्रधान भोपजी हूल कुछ सवारों के साथ एकदम टूट पड़े और गींदोली को उठाकर घोड़ा दौड़ा दिया । गींदोली को लेकर महुवे पहुँचे तो उस समय गणगौर को विसर्जित कर जगमालजी की सवारी लौट रही थी । भोपजी ने गींदोली जगमालजी को दी । जगमाल जी को हर्ष का पार नहीं रहा । उन्होंने सम्मान के साथ गींदोली को आगे किया और आप पीछे हुए । गणगौर के साथ गई हुई स्त्रियों ने उल्लसित हो गींदोली को बधाई दी और वे इन दोनों की सवारी निकाल साथ में गाती हुई चलीं—

आगे आगे गींदोलड़ी
पाछे ए जगमाल कंवर
धीरा रो ए जगमाल कंवर
म्हारो छैल रूस्यो जाय ।

तब से (लगभग ६०० वर्षों से) महुवे से पकड़कर ले जाई गई १४० कन्याओं के बदले में गींदोली की स्मृति को राजस्थानी महिलाएँ प्रति वर्ष गाकर ताजा कर देती हैं ।[1]'

---

[1] खेलण दो गणगौर ओ पन्नामारू ; रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, मरू भारती, वर्ष १२ अंक २, पृष्ठ २१ ।

बीकानेर की गणगौर :

बीकानेर में बड़े सवेरे ही मोहल्ले–मोहल्ले में गणगौरें घूमती दिखाई देती हैं। अपनी-अपनी गणगौरों को भली प्रकार सजाकर उन्हें सिर पर रखकर महिलाओं की टोलियाँ अपने सगे समधियों, इष्टमित्रों के घर गाती हुई घूमती रहती हैं। संध्या को चोतीने कुए पर सभी गणगौरों का विशाल मेला सा लगा दिखाई देता है। भांति-भांति की गणगौरों और गौरियों के झुंड के झुंड मेले को द्विगुनित शोभा देते हैं। राज की गणगौर की सवारी भी यहीं आती है जहाँ कुछ देर तक राज गणगौर को बिठाकर उसके सम्मुख घूमरें ली जाती हैं। यह गणगौर–सवारी जब लौट जाती है तो उसके बाद शहर की गणगौरों का मुकाबला रहता है। इसमें अपने सिर पर गणगौर लिये जो औरत नियत स्थान पर सबसे पहले पहुँचती है उसे राज्य द्वारा पुरस्कृत किया जाता है।

जयपुर की गणगौर :

गुलाबी नगर जयपुर का गणगौर का त्यौहार अपनी कलात्मक सवारी के लिये प्रसिद्ध है। राजपरिवार की ओर से जब गणगौरों का त्यौहार समाप्त हो गया तब राज्य की ओर से जयपुर में जिस प्रकार से सवारी का आयोजन किया जाता है वह देखते ही बनता है। कई विदेशी भी इसे देखने के लिये आते हैं। इस त्यौहार की यहाँ यह अच्छी परंपरा पड़ गई है जो ऐसे त्यौहरों में नई स्फूर्ति और नया रंग भरती है। गणगौर को वैसे वसंत की बहार और ग्रीष्म की तपन के बीच की कड़ी कहा गया है इसीलिये यहाँ 'गणगौर घाघरो घमकायौ अ'र गरमी ही गरमी' कहावत प्रचलित है। यहां के महाराजा माधोसिंह के ज़माने में हुए नागरपाड़ा के रास्ते के निवासी भट्ट मथुरानाथजी शास्त्री 'मंजूनाथ' ने गणगौर की सवारी और मेले का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। एक नमूना यहाँ द्रष्टव्य है—

> सुन्दर सुरंग वेष भूषित सुचारु तनु
> नागर नितम्बिनी निरूद्ध भूरिभवना
> प्रान्तर सुमित सहकार तरु गन्धवनी
> दीपित मनोजवन्हि वासन्तिक पवना।
> प्रति भवना उद्धृत मनोज्ञ घृत पूर भरा
> सुखित संयोगिचित्त चिन्ता बलवना
> गौरीगण वन्द्य गणगौरी गुणगौरव तो
> जय नगरीह भाति सर्व सौख्य सवना॥

(मन हरण सुन्दर वस्त्रों से भूषित सुन्दरी पुरनारियों से जिस नगरी के भवन भरे हुए हैं, समीप के बागों में फूले हुए आमों से टकराकर आई सुगंधी वासन्तिक वायु ने यहाँ मदनवन्हि को उभार दिया है, घर-घर में जहाँ घेवरों को आदर दिया गया है, संयोगी पुरुषों के चित्त से चिन्ता का लेश तक जहां विदा हो गया है, गौरीगण के पूजनीय इस गणगौरी के गुण से यह जय नगरी सर्व सुखों को देने वाली है।)[1]

निमाड़ की गणगौर :

निमाड़ में गणगौर मनाने का अपना निराला ठाठ है। होली के दूसरे दिन से उसकी ठंडी राख से ग्राम बालाएँ कुछ खड़ें (कंकड़) बीन लाती हैं। उन खड़ों को जल से भरे पात्र में गौर (गऊर) की प्रतिष्ठा की जाती है। अपनी गौर के साथ वे कन्याएँ आम्रकुंज में फूलपाती खेलने जाती हैं। उन दिनों आम्र बौराने लगते हैं। ऐसे में देवी पांच दिन आम्रकुंजों में फूल पाती खेलती है फिर घरों में बांस की छोटी-छोटी टोकरियों में जवारे बोये जाते हैं जिसे गणगौर की बाड़ी कहते हैं। उसके बाद काठ के मुखौटे और बांस के धड़वाले गणगौर और 'धणियेर राजा' के पुतले बनाये जाते हैं जिन्हें 'रथ' कहते हैं। जवारे रथ के भीतर प्रतिष्ठित कर दिये जाते हैं। अखड सौभाग्यवती, पुत्रवती रनुबाई अपने पति सूर्य सहित पितृ गृह आती है और नौ दिन रहकर सभी स्वजनों से मिलकर हंस-बोलकर पूजा करनेवाली स्त्रियों को दूध, पूत, सौभाग्य का वरदान देकर चैत्रशुक्ला तृतीया को झालरिया गीत के साथ विदा होती है। चैत्र कृष्णा दशमी से नौ दिन तक चलनेवाले इस पर्व के दौरान निमाड़ का संपूर्ण ग्राम्यांचल गणगौर गीतों की अनुगूंज से महकता रहता है। बड़े मान-मनुहार के बाद दामाद बेटी को लेकर श्वसुर गृह आये हैं। कहीं उनके आदर सम्मान में कोई कमी न रह जाये। एक तो वैसे भी जामाता 'दशम गृह' की स्थिति में है। उसके तुष्ट रहने में ही कुशल है, रुष्ट रहने में नहीं। अब यह दामाद साधारण हाड़ाराव न होकर साक्षात् सूर्य देवता हैं। आठवें दिन गणगौर तथा धणियेर राजा के रथ कुछ दूर तक जाते हैं और फिर गृहस्वामी द्वारा बहुत विनय करके दामाद को एक दिन और रुक जाने पर राजी किया जाता है। इसे 'रथ बौढ़ाना' कहते हैं। कितना अजीब है अपना यह देश और कितनी अनोखी है इसकी सांस्कृतिक धरोहर जिसमें कहीं (पूर्व में) बेटी को श्रद्धापूर्वक माँ कहने की

---

[1] सवारी गणगौर की, राजस्थान पत्रिका, ७ अप्रेल ७२।

परंपरा है तो कहीं (पश्चिम में) मां–आदि शक्ति को नौ दिन तक बेटी बनाकर लाड़–चाव से रखने और अश्रुपूरित नेत्रों से विदा करने की परंपरा है ।[1]

महाराष्ट्र की गणगौर :

महाराष्ट्र में गणगौर का उत्सव सर्वथा भिन्न प्रकार से मनाया जाता है। इस संबंध में श्रीमती मालती शर्मा ने अपने पत्र में मुझे सूचित किया कि महाराष्ट्र में गणगौर की स्थापना (अकेली गौरी की) चैत्र शुक्ला तृतीया को होती है और एक माह तक यानी अक्षय तृतीया तक गौरी झूले में रहती है। तीनों तृतीयाओं को उन्हें गुझिया का नैवेद्य लगाना पड़ता है। किसी भी दिन महीने भर में सुवासिनी स्त्रियों को हल्दी कुमकुम के लिये बुलाया जाता है। उस दिन गौरी के सामने गेहूं की रांगोली बनाते हैं। कच्ची केरी को उबालकर उसमें गुड़ इलायची मिलाकर पना बनाया जाता है। चने भिगोये जाते हैं। गौरी के सामने खीरा और खरबूजा रखा जाता है। चने की भीगी दाल में केरी मिलाकर वाटकी दाल बनाते हैं। आगत सुहासिनों को पना पिलाया जाता है। गोले शक्कर का प्रसाद दे वाटकी दाल भी दी जाती है। इत्र पुष्प देकर भीगे चने और खीरे से गोद भरी जाती है।

अक्षय तृतीया को भोग लगाकर थोड़े चावल डाल गौरी की विदा हो जाती है। यानी देवी की मूर्ति पूजा घर में वापिस रख दी जाती है झूले से उतारकर। यह सौभाग्य के लिये ही हल्दी कूंकू होता है लेकिन चैत्रीय गौरी की स्थापना और हल्दी कूंकू केवल ब्राह्मणों में ही होता है अन्य जातियों में नहीं। क्वार में गौरी गणपति और महालक्ष्मी की पूजा सभी जातियों में होती है। यहाँ गणगौर का कोई विस्तार नहीं। हल्दी कूंकू को आई नवपरिणिताओं से पति का कोई छंद रचकर लेने को भी कहा जाता है। न सवारी निकलती है न नाचगान और न ही ईसरजी साथ रहते हैं। ये छन्द अवश्य ही अनूठी और मनुहार भरी मधुर कल्पनाओं तथा पारस्परिक प्रेम और आदर भाव से भरे होते हैं।[2]

भीलों की गणगौर :

भीलों में गणगौर मनाने का विचित्र रिवाज पाया जाता है। इस दिन

---

[1] सोरठ सुन्दरी गणगौर कौन थी ?, अविनाश सरमंडल, धर्मयुग २१-३-७६, पृ० ३१।

[2] श्रीमती मालती शर्मा द्वारा पूना से लेखक के नाम २१ मई ७७ को लिखे गये पत्र से।

भील अपने सभी नवोढ़े जँवाईयों को बुलाते हैं। मिट्टी की बड़ी गणगौर बनाकर उसे किसी कुंवारी लड़की की पोशाक पहना दी जाती है। सभी जमाई किसी स्थान विशेष पर एकत्रित हो जाते हैं। बारी-बारी से गणगौर की मूर्ति भील युवती के सिर पर रख दी जाती है जिसे लेकर वह निश्चित स्थान तक दौड़ती है और उसके पीछे-पीछे उसका पति अपने हाथ में नंगी तलवार लिये दौड़ता है। यह क्रम बारी-बारी से तब तक चलता है जब तक कि सभी जँवाईयों का नम्बर न आ जाये।

गरासियों की गणगौर :

गरासियों में गणगौर मनाने का अपना निराला ही तरीका है। वैसाख सुदी चतुर्थी को आबूरोड़ के पास भाखरोर के मैदान में जहाँ बरसाती नाला पड़ता है, गणगौर का सबसे बड़ा मेला भरता है जिसमें सैकड़ों की तादाद में गरासिया

गरासियों की गणगौर-ईसर

स्त्री-पुरुष सम्मिलित होते हैं। इनमें गरासिया लोग शंकर पारवती की आराधना के रूप में गौर ईशर के विवाह का स्वांग रचते हैं तथा नृत्य-गीतों द्वारा मनोरंजित होते हैं। इसके लिये ये लोग भील कलाकार से लकड़ी की गणगौर-

ईशर की मुखाकृतियाँ बनवाते हैं। यह कलाकार वही होता है जो परम्परागत यह कार्य पीढ़ी-दर-पीढ़ी करता आ रहा होता है। गोल लकड़ी में यह कलाकार आँख, नाक, मुख आदि खोदकर बड़े सुन्दर कलात्मक चेहरे निकालता है।

तृतीया को विशेष संस्कार के साथ गरासिया स्त्री-पुरुष भील कलाकार के घर जाकर दोनों प्रतिमाओं को लाते हैं। लाने से पूर्व वे गौर के मुहँ पर सिन्दूर और फिर पन्नी लगाते हैं और गर्दन में लकड़ी लगाकर बाजोट पर स्थापित करते हैं। यहीं गौर को अपने साथ लाये कपड़े पहिनाते हैं। आम के पत्तों तथा फूलों की मालाओं से उसे सजाते हैं। उसके कानों में झेले, गले में हंसली तथा माथे पर बोर धारण कराते हैं। ईशर को भी अच्छी तरह सजाया जाता है। उसके सिर पर लाल साफा बांधते हैं। घोड़े के बालों की मूछें चिपकाते हैं तथा साफे पर हरे कपड़े की किनरनी तथा छोगा-छल्ला लगाते हैं। इसके मुंह पर भी सिन्दूर लगी लाल सफेद पन्नी दी जाती है। गर्दन में लकड़ी लगाकर सफेद कुर्ता पहनाया जाता है जिसके दोनों लम्बी बाहें दो लकड़ियों में घुमा दी जाती हैं। इसके गले और शरीर को भी जंगली फलों तथा पत्तों की मालाओं से सजाया जाता है। यह ईशर भी गौर की तरह बाजोट पर खड़ा किया जाता है।

मैदान में कपड़ा बिछाकर दोनों की प्रतिमाएँ खड़ी कर दी जाती हैं। इन प्रतिमाओं के साथ एक तलवार तथा चेहरा भी उस भील कारीगर से बनवाया जाता है जिन्हें सिन्दूर पन्नी लगाकर इनके पास रख दिया जाता है। रात्रि को इनके सम्मुख जागरण किया जाता है। दोनों के सम्मुख अग्नि प्रज्वलित की जाती है जिसमें भेरोले (गुड़ के गुलगुले) होम कर प्रसाद रूप में सभी को बांट दिये जाते हैं। दोनों के सम्मुख मिट्टी के अखंड दीप जलाये जाते हैं। इस रात्रि को गरासिया पुरुष नाना स्वांग भी धारण करते हैं।

प्रातः होते ही सभी लोग अपने-अपने घर प्रस्थान कर जाते हैं और पुनः मध्यान्ह पूर्व एकत्र हो गौर-ईशर का जुलूस निकाला जाता है जिसमें एक महिला के सिर पर गौर, दूसरी के सिर पर ईशर तथा तीसरी के सिर पर टोपले में खांडा और मुखौटा रहता है। आगे ही आगे गरासिया पुरुष ढोल, थाली, मादल बजाते गाते उछलते चलते हैं और पुनः उसी स्थान पर गणगौर ईशर को लाकर बिठा देते हैं। इसी समय कुछ स्वांग तमाशे लाये जाते हैं। इनमें बुढ़िया-बोहरा तथा हाथी के तमाशे सर्वाधिक लोकप्रिय हैं।

बुढ़िया–बोहरे के तमाशे में बूढ़ी डोकरी के वेश में फटे पुराने कपड़े पहन एक व्यक्ति आता है। उसके साथ एक लड़की आती है जो अच्छे वस्त्रों से सज्जित होती है। इसके सहारे बुढ़िया लंगड़ाती हुई चलती है। उसके पीछे-पीछे दो बनिये कंडों के दो गट्ठर लादे आते हैं। बुढ़िया उन्हें देख 'का लेन आया रे बोरा' (वोरा क्या लेने आया ?) कहकर टूटा टोकरा फैंकती है। वे इधर उधर भागते हैं पर बुढ़िया उन्हें पकड़ लेती है और अपनी कन्या के लग्न निकलवाने के लिये ब्राह्मण को बुला लाने को कहती है। वे उसका कहा मान ब्राह्मण को बुलाने जाते हैं। इतने में सादे वेश में ब्राह्मण आता है। बनिये अपने साफो के पल्ले आँखों के आगे कर–कर उससे अपने को छिपाते हैं। इतने में एक दूल्हा वहां आता है जिसका विवाह ब्राह्मण बुढ़िया की लड़की टेमकुरी के साथ कराता है। दोनों बोहरों के चारों ओर फेरे दिलवाता है। बीच-बीच में बनिये टेमकुरी को उड़ा ले जाने की मसखरी बातें कर खिलखिलाते हैं। बुढ़िया टेमकुरी के पीछे–पीछे चलती है और अंत में सभी वहां से चल देते हैं।

हाथी का तमाशा :

हाथी के तमाशे में सर्वप्रथम लकड़ियों की सहायता से हाथी का ऊपरी हिस्सा बनाकर उसके घास लपेट दी जाती है। इस हाथी के ढाचे को चारपाई पर रख उस पर काला–सफेद चद्दर डाल दिया जाता है। दोनों आँखों की जगह दो लोठे, कान की जगह अनाज साफ करने के सूप, कपड़े की थैली में घास भरकर सूंड तथा कपड़े की सी पूंछ लगादी जाती है। पांवों की जगह चार पुरुष मिलकर चारपाई को सिर पर उठा लेते हैं। जब चारों पुरुष इस हाथी को लेकर धीरे–धीरे चलते हैं तो ऐसा लगता है जैसा साक्षात् हाथी ही चल रहा हो। हाथी के ऊपर एक पुरुष नंगी तलवार लिये बिठाया जाता है। आगे वांसुरी, ढोल, मादल बजाते गरासिया पुरुष चलते हैं। उनके पीछे नंगी तलवारें घुमाते हुए नृत्य करते पुरुष, फिर देवी के तीन–चार भोपे लोहे की जजीरों को अपनी पीठ पर उतारते, पटकते हुए, फिर हाथी और उसके पीछे मेलार्थियों की पूरी भीड़ रहती है।

हाथी का इसी तरह का तमाशा भील लोग भी गवरी में करते हैं। इन तमाशों के अलावा कच्छीघोड़ी का तमाशा भी किया जाता है। सभी तमाशे ख्याल के नाम से भी चलते हैं।

जहां इन तमाशों–ख्यालों में पुरुष गरासिया भाग लेते हैं वहां स्त्री गरासिया अपने सामुहिक नृत्यों में खुलकर भाग लेती हैं तब पुरुष दर्शक बनकर उन्हें

प्रोत्साहित करते हैं। इन नृत्यों में वाद्य भी पुरुष ही बजाते हैं। नृत्य के समय औरतें गणगौर ईशर को भी अपने सिर पर उठाये नृत्य करती रहती हैं। अन्य स्त्रियां भी इनके साथ नृत्य-साथ देती हैं और गणगौर ईशर उठाई महिलाओं से अपने सिर पर इन्हें धारण करने की छीना-झपटी करती रहती हैं। कभी इन औरतों को अन्य औरतें अपने घेरे में लेकर उनके चारों ओर नाचती रहती हैं। कभी हाथ में हाथ डाल चन्द्राकार नृत्य करती हैं। नृत्यों की इन विविध झांकियों में इन गरासिया स्त्री-पुरुषों के मृदुहास, उल्लास और आनद के उन्मुक्त रंगों की छटा देखते ही बनती है।

इन नृत्यों के पश्चात् एक पुरुष वहां रखे मुखौटे को अपने मुँह पर लगाकर गवरी-नायक बूड़िये की भांति मूंछों पर ताव देता हुआ एक पांव ऊपर उठाकर कूदकी भर एक कदम आगे बढ़ता गौर महिलाओं के पास नाचता-कूदता रहता है।[1] अंत में गौर ईसर का विसर्जन किया जाता है तब एक जुलूस सारे गाँव में घुमाया जाता है और निर्दिष्ट स्थान पर तालाब या कुए पर जाकर उन्हें जल में पधरा दिया जाता है। जल में विसर्जित करने की क्रिया तब ही की जाती है जब देख लिया जाता है कि गणगौर ईशर बहुत ही जीर्णशीर्ण और पुराने हो गये हैं अन्यथा इन्हें लेजाकर मंदिर में रख दिये जाते हैं और अगली गणगौर को उन्हें नया परिधान देकर अपना काम चला लिया जाता है। गरासिया औरतों में गौर संबंधी गीत भी प्रचलित हैं जो अन्य गीतों से अपना वैशिष्ट्य लिये होते हैं।[2]

हाजी की गणगौर :

ठिकानों में भी इसदिन प्रत्येक ठिकाने (रावले) की गणगौर निकलती थी। उस गणगौर का अच्छा जुलूस निकलता। राजमहल (रावले) में अच्छा महोत्सब आयोजित किया जाता। कानोड़ में ठिकाने की गणगौर के साथ-साथ एक गणगौर और निकलती थी जिसे हाजी (शाहजी) की गणगौर कहते थे। यहाँ के ८५ वर्षीय श्री मनोहरसिहजी बावेल ने बताया कि हाजी

---

[1] गवरी संबंधी जानकारी के लिये द्रष्टव्य कला मंडल से प्रकाशित लेखक की पुस्तक-लोकनाट्य गवरी : उद्‌भव और विकास।

[2] यह विवरण कलामंडल द्वारा सन् १९५४-५५ में भारत सरकार के गृह संत्रालय द्वारा प्रदत्त राजस्थान की आदिम जातियों का सांस्कृतिक सर्वेक्षण की अप्रकाशित रिपोर्ट के आधार पर तैयार किया गया है।

की यह गणगौर हमारे यहीं से निकलती थी। जब से कानोड़ गणगौर निकलनी प्रारंभ हुई तब से राजपरिवार से जुड़े रहने के कारण हमें भी एक गणगौर निकालने का आदेश प्राप्त हुआ। इसके अनुसार राज के मुखिया के नाम से मुहूर्त निकलवा लिया जाता था कि कितने दिन तक गणगौर का त्यौहार मनाना है, कब किस-किस समय माताजी की पूजा करनी है, और किस दिन किस समय उनका विसर्जन करना होगा। प्राय: दो या तीन दिन का उत्सव रहता। हमारे पास भी एक सरवालिये में जवारे आजाते तो हमउसे गणगौर निकालने का निमंत्रण मानकर अपनी गणगौर की तैयारी कर लेते। हमारी गणगौर को हम भी अच्छे कपड़े लत्तों तथा आभूषणों से सजाते। मुहूर्त के अनुसार प्रतिदिन रावले की ओर से बैंड बाजेवाले आते तब डावड़ी अपने सिर पर उसे गाजेबाजे के साथ महल में ले जाती। वहाँ रावली गणगौर के साथ इसको भी रख देते। विधिवत् पूजा आदि होती। दर्शनों के लिये सारा गाँव उमड़ पड़ता। महलों में घूमर होती। डावड़ियाँ नाचतीं। फिर सवारी निकलती। कमल वाले तालाब पर सवारी जाकर पूरी होती। वहाँ चबूतरे पर बिछात कर दोनों गणगौरों को विराजमान किया जाता जहाँ उनके सामने नृत्य होते फिर वहाँ से गाजेबाजे के साथ महल की गणगौर महल पहुँच जाती और हमारी हमारे घर पर। दूसरे दिन भी यही क्रम रहता।

श्री मनोहरसिंहजी ने मुझे बताया की ठिकानों में कानोड़ को गणगौर की सवारी सबसे अच्छी मानी जाती थी। कभी-कभी दूसरे ठिकानेवाले चुपके-चुपके यहाँ की सवारी देखने आते थे। वे चुपचाप यहाँ की पनवाड़ियों में छिपे रहते थे। काठ की ये गणगौरें खंडित होने अथवा टूटफूट होने पर; इनकी जगह दूसरी गणगौरें बनवाई जाती थीं। इन्हें बनाने का काम बसी (चित्तौड़) के खेरादी करते थे। कानोड़ राजघराने की अभी बीसवीं पीढ़ी चलरही है और मनोहरसिंहजी की १९ वीं। यहाँ केवल गणगौर की ही सवारी निकलती रही है। उसमें ईसरजी नहीं होते हैं।[1]

घुड़ला फिराना :

शीतला अष्टमी से लड़कियाँ अपने सिर पर कुम्हार से लाई मिट्टी की मटकी लिये घर-घर घूमती हैं जिसे घुड़ला फिराना अथवा घुड़ला घुमाना कहते

---

1 कानोड़ में १५ जून ७७ को लेखक से श्री बाबेल की हुई भेंटवार्ता के आधर पर। यह कस्बा उबयपुर से लगभग ७२ कि.मी. दूर है।

हैं। यह मटकी चारों तरफ छेद लिये होती है जिसमें दीपक जला दिया जाता है। घुड़लो 'घूमेला जी घूमेला' गीत पर जब लड़कियाँ नाचती हैं तो रात्रि में यह घुड़ला टिमटिमाते प्रकाश में बड़ा ही सुहावना लगता है। इस घुड़ले के पीछे भी एक ऐतिहासिक प्रवाद छिपा हुआ है। इसे डॉ. कन्हैयालाल सहल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

चैत के महीने में मारवाड़ में घुड़ले का मेला भरता है। कहा जाता है कि वि० सं० १५४८ में अजमेर के मल्लूखाँ ने मेड़ता पर चढ़ाई की। वह पीपाड़ के पास कोसाना ग्राम में गौरी पूजा के लिए आई हुई १४१ स्त्रियों को ले भागा। इसकी सूचना जब जोधपुर के राव सातलजी को लगी तो उन्होंने तत्काल पीछा किया। उक्त स्त्रियों को तो वे छुड़ा ही लाये किन्तु साथ ही अमीर घराने की कुछ अन्य स्त्रियों को भी ले आये जिनमें घुड़लाखां की एक सुन्दर कन्या भी थी। प्रवाद प्रचलित है कि घुड़लाखां ने इस अपमान का बदला लेने के लिए वीरतापूर्वक युद्ध किया किन्तु तीरों से छिदकर उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। घुड़लेखां की याद में उसकी लड़की ने घुड़ले का त्यौहार प्रचलित किया जिसमें बालिकाएं छिद्रोंवाले घड़े को सिर पर रखकर अपने सम्बन्धियों के यहाँ गीत गाती हुई जातीं हैं।[1]

महाराणा कुम्भा की मृत्यु के पश्चात् (सं० १५२५ वि०) मालवा के सुल्तानों ने पूर्वी राजपूताना में अपना प्रसार करके देश के मध्य भाग स्थित

---

[1] घुड़ले का गीत इस प्रकार है–

घुड़लो घूमेला जी घूमेला।
घुड़ले रे बांध्यो सूत,
घुड़लो घूमेला जी घूमेला॥
प्रतापजी रे जायो पूत,
घुड़लो घूमेला जी घूमेला।
सवागण बारे आव,
घुड़लो घूमेला जी घूमेला।
मोत्यां रा आखा लाव,
घुड़लो घूमेला जी घूमेला।
पिवजी रो पीलो लाव,
घुड़लो घूमेला जी घूमेला॥

अजमेर और सांभर पर भी अपना अधिकार कर लिया था। उनकी तरफ से मल्लूखां अजमेर का हाकिम था। किन्तु मारवाड़ के वीर राठोड़ उसे चैन की स्वांस नहीं लेने दे रहे थे। अजमेर पर लगातार राठोड़ों के घावों से मल्लूखां चिन्तित रहता था और इन सबल शत्रुओं से वदला लेने की फिकर में लगा हुआ था। सं० १५४८ वि० की चैत सुदी १ या २ के दिन मल्लूखां ने मारवाड़ के पीपाड़नगर पर दौड़ की। नगर को लूटकर लोटते समय मुसलमानों ने गौरीपूजन के निमित्त नगर से बाहर कुओं से दुर्बा लेकर लौटती हुई नगर–कन्याओं (तीजणियों) का अपहरण किया।

जोधपुर के तत्सामयिक राव सांतलजी, जो राव जोधाजी के पुत्र थे, तत्काल मुसलमान–सेना के पीछे चढ़ दौड़े। उनके साथ उनके भाई सूजाजी और मेड़ता के राव दूदाजी भी थे। कोसाणा गांव के पास यवन सेना को जा दबाया। राठोड़ों और मुसलमानों में जमकर लड़ाई हुई। मल्लूखां की सेना का प्रधान सेनानायक मीर घड़ूला' या घड़ूका जिसका असली नाम सिरियाखां था, मुठभेड़ में मारा गया। मल्लूखां ने भागकर प्राण बचाये। राव सांतलजी ने नगर कन्याओं (तीजणियों) को छुड़ा लिया किन्तु युद्ध में लगे घावों से वे इतने घायल हो गये थे कि चैत सुदी ३ की रात्रि को उनका प्राणान्त हो गया।

कहा जाता है कि मीर घड़ूला का मस्तक काटकर उन तीजणियों को दे दिया गया था जिसे थाली में रखकर वे कन्याएँ नगर के घर–घर में घूमीं और उस आततायी के काटे हुए मस्तक का प्रदर्शन करके ग्रामीणों में इस भावना का संचार किया कि मारवाड़ में नगर-ग्राम–कन्याओं के अपहरणकर्ताओं को ऐसा दण्ड मिलता है। इसके पश्चात् हर साल या गणगौर के अवसर पर इस घटना को तरोताजा बनाये रखने हेतु गौरी–पूजन हेतु आनेवाली कन्याएँ कुम्हार के यहां से एक छोटी मटकी जिसके चोतरफ छिद्र होते हैं, लाती हैं और उसके अन्दर दीपक जलाकर उसे सिर पर रखकर अन्य कन्याएं साथ मिलकर घर–घर घुड़ला का गीत गाती हुई घूमती हैं और तेल संचय करती हैं। इस प्रकार आज लगभग ५०० वर्षों से मारवाड़ उस ऐतिहासिक घटना की याद को ताजा बनाए हुए है।[1]

गणगौर का पहनावा :

गणगौर ईसर को विविध वस्त्राभूषणों से बड़े कलात्मक ढंग से सजाया

---

1 घुड़ला : एक ऐतिहासिक प्रवाद; रंगायन, जनवरी'७७, पृ. २०-२१।

जाता है। इस सज्जा में कहीं किसी प्रकार की कोई कमी नहीं रह जाय इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता है। राजघराने में तो कई दिनों पहले से इस सज्जा की भव्य तैयारियां प्रारम्भ हो जाती हैं। अलग-अलग व्यक्तियों को अलग-अलग काम सौंप दिये जाते हैं। कीमती से कीमती पोशाक तथा बहुमूल्य जवाहरात से सजी गणगौर ऐसी लगती है जैसे इन्द्राणी अपने सम्पूर्ण सिणगार में धरती पर उतर आई हो।

सर्वप्रथम गणगौर की काष्ठ-प्रतिमा एक चौकी पर लगा दी जाती है। उसके नाप का लँहगा, कांचली, कुर्ती आदि बनी हुई होती है जिन्हें पहनाकर रूमाल से मुंख पोंछकर दो चमकती हुई दालियां गणगौर के ओठों पर गोंद से चिपका दी जाती हैं। इसी भांति चमकती हुई दालियों से गणगौर की ललाट को अलंकृत किया जाता है। गोटे किनारी लगी काले कपड़े की पट्टी को सिर पर बांध गणगौर के केशपाश बना दिये जाते हैं। प्रतिमा के सिर पर छोटा सा आंकड़ा लगा होता है। उसमें रखड़ी का डोरा पिरोकर रखड़ी बांध दी जाती है। चोटी के काले डोरे लपेटकर चमकते-दमकते मोतियों व लालों से लटकी हुई लम्बी आठी बांध देते हैं। साड़ी पहनाने में बड़ी सुघड़ता की आवश्यकता होती है। घंटों लग जाते हैं। जगह-जगह से सुई डोरे की टीपें लगाकर पहना देते हैं।

केवल सौभाग्यवती स्त्रियां ही गणगौर को पोशाक पहनाती हैं। वृद्धाएँ बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से पोशाक का निरीक्षण करती हैं। बहुओं को बार-बार आगाह करती जाती हैं। सवारी में सहस्त्रों आँखें गणगौर के दर्शन करते समय पोशाक को भी ध्यान से देखती हैं। वे आँखें स्त्रियों की चतुराई और सुघड़ता को गणगौर की पोशाक देखकर आंकती हैं। मैंने कई बार बाजार से खड़े होकर गणगौर के दर्शन करनेवाले लोगों को गणगौर की पोशाक संबंधी न्यूनता और महत्ता को लेकर विवाद करते देखा है कि इस बार माताजी का फलां
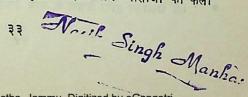
गहना ऐसा नहीं वैसा था। अमुक रंग के लँहगे पर अमुक रंग की साड़ी कम फब रही थी। ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा नहीं होना चाहिये था।

ईसरजी को पुरुष पोशाक पहनाते हैं। सिर पर लपेटा तुर्रा कलंगी, सरपेच और कानों में मोती तथा घुमघुमाला मोटा बागा पहन काली दाढ़ीवाले ईसरजी भव्य लगते हैं। गणगौर और ईसरजी के हाथों में सुनहरी किनारी के तुर्रे दे देते हैं। दोनों के गले में बद्दी नाम का आभूषण डाल देते हैं। इन काष्ठ प्रतिमाओं को औरतों के सिरपर रखकर तालाब या कुओं तक सवारी के रूप में पधराते हैं। वहां उन्हें पाटों पर रख देते हैं। मेवाड़ में तालाब पर पाटों पर रखी मूर्ति के आगे उत्सव मनाया जाता है। पाटों के इर्दगिर्द औरतें घूमर लेती हैं, सालेड़ा लेती हैं।[1] गणगौर का यह सिणगारी-सौंदर्य नारी-रूप का एक ऐसा मापबन गया कि सजी सिणगारी महिला अपने रूप की द्विगुणित आभा लिये दिखाई देती है तो उसकी समता-समानता 'रूप मे जाणै गिणगौर' कहकर आंकी झांकी जाती है।

शेखावाटी गणगौर :

शेखावाटी क्षेत्र की गणगौर ईसर का उल्लेख करते हुए श्री सौभाग्यसिहजी शेखावत ने लिखा कि आमतौर से ईश्वर और गणगौर की मूर्तियाँ काष्ठ की होती हैं। कहीं-कहीं मेड़ता स्थान की मिट्टी की भी होती हैं। मेड़ना की मिट्टी के मात्र चेहरे होते हैं। ये मृण्मूर्तियाँ भी बड़ी सुन्दर होती हैं। गणगौर के दिन बाजोटों पर कड़वी के डंठलों से हाथ बनाकर ईश्वर गणगौर की आकृति बना दी जाती है फिर दोनों को पोशाकें पहनाकर के चेहरे लगा दिये जाते हैं। गणगौर को सद्य विवाहिता वधू के आभूषण बाजू, आड, कंठी आदि पहिनाये जाते हैं। खूबसूरत पोशाक से सज्जित की जाती है। ईश्वर के मस्तक पर पाग बांधी जाती है। लंबा अंगरखा पहनाया जाता है। कटि पर तलवार बांधी जाती है। यह सवारी ग्राम के स्वामी के घर से निकलती है। मेरे गाँव में मेरा घर टीकाई रहा है। इसलिये गाँव में हम लोगों को बड़ी कोठड़ी वाले या बड़े ठाकुर कहते हैं। हमारे यहां से जो गणगौर निकलती है उसमें महादेव को पहिनाने का अगरखा मेरे स्वर्गीय पिता श्री ठाकुर कालूसिहजी के विवाह का नैनसुख है। वही सदा पहनाया जाता है। वह अंगरखा कोई ९०-९२ वर्ष पुराना होगा पर आज भी बड़ा सुन्दर लगता है।[2]

---

1 मरुभारती में छपे रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत के लेख गणगौर और ईसरजी, से।

2 श्री शेखावत द्वारा लेखक के नाम लिखे गये १९-५-७७ के पत्र से।

धींगा गणगौर :

वैसाख कृष्णा तृतीया को गणगौर का एक और त्यौहार मनाया जाता है जो 'धींगा गणगौर' के नाम से जाना जाता है। कहते हैं कि इसे उदयपुर के महाराणा राजसिंह ने अपनी छोटी रानी को राजी रखने के लिए प्रारम्भ किया। धींगाई इधर जबर्दस्ती को कहते हैं। रानी की जिद्-जबर्दस्ती से प्रारम्भ करने के कारण ही इसका नाम धींगा गणगौर पड़ा। राजस्थान के विविध अंचलों में यह त्यौहार भिन्न-भिन्न रूप में मनाया जाता है। कहीं सवारी का आयोजन होता है, कहीं मेले आयोजित होते हैं तो कहीं-कहीं महिलाओं द्वारा इस दिन विचित्र प्रकार के स्वांग भी धारण किये जाते हैं। इसके पीछे लोककथाएँ भी कुछ प्रचलित हैं।

धींगा गवर को लोककथा :

जोधपुर में धींगा गवर के बारे में प्रचलित लोककथा इस प्रकार सुनने को मिलती है—'एकबार पार्वती ने भीलनी का रूप धारण कर महादेव की तपस्या को भंग कर दिया। पार्वती द्वारा भीलनी का रूप धारण करने का उद्देश्य था कि वह महादेव की परीक्षा लेना चाहती थी कि महादेव उसे प्यार करते हैं अथवा अन्य महिला से भी उनका लगाव है। महादेव भीलनी के रूप लावण्य पर इतने आसक्त हो गये कि उन्होंने भीलनी से नाता कर लिया।' जोधपुर की महिलाएँ इसी नाता करनेवाली धींगा गवर की याद में हर वर्ष मेला आयोजित करती हैं। बताया गया है कि डेढ़ सौ वर्ष पूर्व धींगा गवर की एक सुन्दर प्रतिमा को चित्तौड़ गढ़ से लूटकर लाया गया तब से यह गवर पूंगलपाड़ा की, हटड़ियों के चौक में हर वर्ष रखी जाती है।

धींगा गवर के मेले का मुख्य आकर्षण महिलाओं द्वारा स्वांग करना है। विचित्र और आकर्षक स्वांगों में महिलायें इस मेले में आती हैं। जोधपुर में महिलाओं के इस मेले के मुख्य आकर्षण के स्थल पूंगलवाड़ा, सुनारों की घाटी, कुमारिया कुआ, बोबा की गली, हड्डियों का चौक आदि हैं। कहा जाता है कि इस वार इन मोहल्लों की धींगा गवरों को जो वस्त्राभूषण पहनाये गये उनका वर्तमान मूल्य २५ लाख रुपये के आसपास बैठता है। अकेले सुनारों की घाटी की धींगा गवर को एक हजार तोले से अधिक का स्वर्ण भूषण पहनाया गया। यह आभूषण इधर-उधर से मांग कर लाया गया था।

गवर पूजम के बाद जब महिलाएँ स्वांग बनाकर गीत गाती मुख्य बाजार से होकर गुजरीं तो बाजारों में तिल रखने को स्थान नहीं था। इन स्वांगों

की मुख्य विशेषता यह थी कि अधिकांश महिलायें अपने हाथों में डंडा लेकर निकलती हैं।[1]

हाड़ो ले डूब्यो गणगौर :

राजस्थान में गणगौर का त्यौहार लगभग लगभग सभी जगह मनाया जाता है परन्तु पिछले कुछ वर्षों से बूंदी में यह त्यौहार नहीं मनाया जाता है। कहा जाता है कि एकबार यहाँ के राव बुधसिंह के भाई जोधसिंह अपनी पत्नी स्वरूपकंवर तथा सालियों के साथ जब नाव की सैर को निकले तो एक मदमस्त हाथी ने उनकी नाव को पलट दी। इससे नाव में सवार सभी व्यक्ति मारे गये तभी से यहाँ यह त्यौहार मनाना बंद कर दिया गया। इसीलिये कहा जाता है 'हाड़ो ले डूब्यो गणगौर।' हाड़ा तो डूबा सो डूबा, गणगौर को ही ले डूबा। इस दुर्घटना की इसी चाल की एक उल्टी कहावत 'हाड़ा नै ले डूबी गणगौर' (गणगौर हाड़ा को ले डूबी) भी प्रचलित है।

जवारा :

जौ–गेहूं के किसलय नव अकुर को जवारा कहते हैं।[2] नवरात्रि पूजन, गंगोत्सव, पथवारी पूजन, गंगोज, गौरीपूजन जैसे मांगलिक महत्व के कार्यों में

———

1 जोधपुर में स्त्रियों का धींगा गवर का मेला; राजस्थान पत्रिका, २०–४-७६।

2 अमेरिका की डॉ. एन विगमोर ने पीलिया, कायला, गंज खल्वाट, सफेद-बाल, बालझड़, मधुमेह, रक्तस्राव, पित्ताश्मरी, वृक्काश्मरी, कंपवात, पक्षाघात, पोलिया, श्वास, कास, क्षय, हृदयरोग, श्वेतस्राव, असाध्य चर्मरोग, श्वित्र, कुष्ठ, एक्जिमा, बालरोग आदि के लिये जवारों को बड़ा उपयोगी बताया है। अमेरिका के ही घास विशेषज्ञ डॉ. अर्प थोमस ने ४७०० प्रकार की घासों पर अनुसंधान करने के उपरांत गेहूं की घास को सब घासों का सम्राट बताया है। उनका कहना है कि मानवीय रक्त प्रवाहियों में यह नीलरस अपूर्व शक्ति, पूर्ण सामर्थ्य और भरपूर पोषण करता है। मनुष्य के खून में जो तत्व हैं वे सब इस त्रणांकुर में मौजूद हैं। केवल रंग का ही फर्क है। यह रंगीन ब्लड है। विश्व के अन्य विशेषज्ञों ने भी डॉ. विगमोर तथा अर्प थोमस के अनुभव का समर्थन करते हुए इस घास को ईश्वरीय देन माना है।—वनदर्शन, नीमकुंज उदयपुर से प्रकाशित 'जवारा' नामक ८ पृष्ठीय बुलेटीन से, पृष्ठ ५।

जवारे शुभ, कल्याणकारी तथा आरोग्यमूलक समझे गये हैं। पौराणिक और धार्मिक दृष्टि से भी इन जवारों का बड़ा महत्व और उपयोग रहा है। लोकगीतों मे इन जवारों के भी यथेष्ट विवरण मिलते हैं। पथवारी के एक गीत में पथवारी यदि सोने की बताई गई है तो उसके जवारे चाँदी के वर्णित किये गये हैं।[1] गौरी पूजा के साथ-साथ जवारे बोने के उल्लेख भी गणगौर गीतों में मिलते हैं।[2] गणगौर पर गायाजानेवाला जवारे का एक गीत इस प्रकार है-

> म्हारा हरिया ए जवारा ए लाल
> गेऊं लाल सिर सूं बध्या
> गौरा ईसरदास रा बाया ओ क बहू गौरळ सींच लिया
> भाभ्यां सींच न जाणे ए क जव पीला पड़ ए गया
> बाईजी दो घड़ सींच्या ओ क लांबा तीखा सरस बध्या
> म्हारो सरस पटोड़ो ए क बाई रोवां प्हेर लियो
> गज मोतीड़ा रो हार ए क बाई रोवां प्हेर लियो
> वीरा के र अजरावल रे क होज्यो बूड़ा डोकरा
> भाभी सैजां में हींडो ए क पीली पट्यां राज करो।[3]

जवारे के एक अन्य गीत में उसका महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि उन्हें सूरज भगवान ने बोये और रानी रन्नादे ने सींचे। उन्हें चंदरमा ने बोये और रानी रोहणदे ने सींचे। उन्हें ब्रह्मा ने बोये और सावित्री ने सींचे। उन्हें ईसरजी ने बोये और गवरादे ने सींचे परन्तु सींचनेवालियों

---

[1] सोना री पथवारी ए माता रूपा रा जवारा।

[2] गोरळ पूजां जवारा भी बावां
रंगीला प्रीतमजी सूं यो वर मांगा
नंदजी रा कँवर किशोर रंगीले राधे पूजण दो नी गणगौर।

[3] लाल गेहूं के मेरे हरे जवारे सिर तक बड़े हो गये हैं। ईसरदास ने इन्हें बोये और बहू गवरळ ने इन्हें सींचे हैं। भाभियाँ इन्हें सींचना नहीं जानती। जवारे पीले पड़ गये। बाईजी ने दो घड़े सींचे जिससे ये लंबे, तीखे और सरस बधे बढ़े हैं। मेरा सरस पटोड़ा बाई रोवां ने पहन लिया। गज मोतियों का हार बाई रोवां ने पहन लिया। भाई, तुम दीर्घायु प्राप्त कर बूढ़े डोकरे होना। भाभी, तुम शैय्या पर झूलो और सुहागिन रह राज करो।

में कोई भी उन्हें ठीक से नहीं सींच पाई फलतः जौ-जवारे पीले पड़ गये।[1]

गणगौर का सिझारा-दांतणहेला :

गरणगौर के पहले वाले दिन को सिझारा कहते हैं। इस दिन महिलाएँ-किशोरियाँ अपने हाथ पाँवों के मेंहदी लगाती हैं। मेहदी मांडनों में प्रायः वे ही अंकन उभारे जाते हैं जो गरणगौर से सबधित होते हैं। महिलाएँ गरणगौर की पूजा चूंदड़ पहनकर करती हैं तो मेंहदी में भी यही चूंदड़ भांत बनाया जाता है। इस दिन घेवर, शक्करपारा, गुरणों का जोड़ जैसे मिष्ठान्न बनाये जाते हैं। मेंहदी में भी इन्हें मडित किया जाता है। चौपड़ इस त्योहार का मुख्य खेल है तो यह चोपड़ हथेलियों में भी सुगधाया जाता है।

मेवाड़ की ओर यह दिन बड़ा महत्वपूर्ण माना जाता है। इस दिन को इधर दांतरणहेला का दिन भी कहते हैं। सध्या को औरतें नये परिधानों तथा आभूषणों से सजी गीत गाती हुई तालाब की पाल पर जाती हैं जहाँ हथगोड़ में खेलती नाचती मनोविनोद करती हैं।[2] घर लौटते समय वे अपने-अपने हाथों में आम की छोटी-छोटी डालियाँ ले जाती हैं। ये डालियाँ आम का दाँतरण (दतौन) कहलाती हैं। इसी दतौन को गरणगौर के मुँह पर लगाकर उसके दातून करने की रस्म पूरी करती हैं। इस अवसर का नृत्यगीत है—

केसरिया ओ दांतरण आंबा रा
परण्या ओ दांतरण आंबा रा
पातरिया ओ दांतरण आंबा रा
केसरिया ओ लाड़े लाड़ी गेरणो मांगे
पातरिया ओ लाड़े लाड़ी गेणो मांगे

---

1 ए तो सूरज जी बाविया ओ राणी रन्नादेजी सींचिया
राणी रन्नादेजी सींच न जाणे ओ जव पीला पड्या।
ए तो चन्दरमाजी बाविया ओ राणी रोहणदेजी सींचिया
राणी रोहणदेजी सींच न जाणे ओ जव पीला पड्या।
ए तो बिरमाजी बाविया ओ राणी सावितरीजी सींचिया
राणी सावितरीजी सींच न जाणे ओ जव पीला पड्या।
ए तो ईसरजी बाविया ओ राणी गवरादे सींचिया
राणी गवरादे सींच न जाणे ओ जव पीला पड्या।

2 यह स्थान अलग-अलग गाँवों में अलग-अलग जगह होता है। कानोड़ में यह स्थान 'पीरूवले' के नाम से प्रसिद्ध है।

गणगौर पूजा :

दिन को इस दिन कहीं मीठी पूड़ियाँ, खाजे पापड़ी तथा कहीं चूरमा बाटी बनाया जाता है। कोई घर ऐसा नहीं रहता है जहां गणगौर का मिष्ठान्न नहीं बनता हो। मीठी चरकी पापड़ियाँ तथा मीठे चरके फर भी बनाये जाते हैं। गणगौर के लिये ३२ फर (१६ मीठे तथा १६ चरके) बनाये जाते हैं जो उसकी पूजा थाली में रखे जाते हैं। गणगौर स्थान पर जब महिलाएँ पूजा करने जाती हैं तब सौलह तो गणगौर के चढ़ा देती हैं शेष सौलह का एक-दूसरी आपस में अदला-बदली करती हैं। पूजा की थाल में मेंहदी, लच्छा, कंकू के साथ-साथ हल्दी मिले गेहूं-आटे के गणगौर माता के आभूषण बड़े कलात्मक और विशेष दक्षता-कारीगरी लिये होते हैं। कानोड़ में मुझे जीजां (बड़ी बहन) ने बताया कि यद्यपि ये जेवर आटे के होते हैं परन्तु इनका रूप-नक्श तो असली जेवरों से
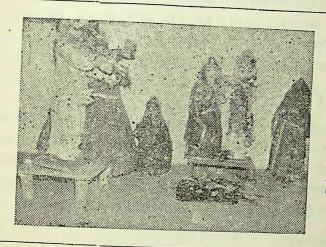
विविधरूपा गणगौर-ईसर

मिलता जुलता ही होता है। बोर बनायेंगे तो उसके नाका करेंगे। उस नाके में लच्छा डालेंगे। बोर के ऊपर आटे की बारीक-बारीक बुंदकियाँ लगाई जायेंगी। इसी प्रकार यदि रखड़ी बनेगी तो वैसी की वैसी रखड़ी बनाई जायेगी। तेड़िया, बजंटी, बींटी, चूडी, कड़े, नेवरियाँ, आइलें, पाइलें, टणके सब आभूषण बनाये जायेंगे। किसी तरह की कोई खामी नहीं रखी जायेगी। पायलों के नीचे आटे की ही छोटी-छोटी घूघरियाँ बनाई जायेंगी और घास की पतली तिली से उनपर बेलें तथा दूसरी डिजाइनें निकाली जायेंगी। इन आभूषणों के अतिरिक्त एक दूब भरा लोठा होता है। सारी औरतें उस लोठे को बीच में रखकर घूघरमार बैठकर अपनी अंगुलियों से पानी का छिड़काव देती हुई

लोठा फेरती हैं और ईसर गाती हैं। ईसर का 'ईसर पूजूं पारपतीजी' वाला यह गीत लड़कियाँ भी प्रतिदिन की पूजा में गाती हैं।

गणगौर का ढोल :

इस दिन रात्रि को कहीं-कहीं गणगौर का ढोल बजता है। तदनुसार ढोलन ढोल लेकर उस स्थान विशेष पर पहुंच जाती है जहाँ ढोल के साथ निमंत्रित की हुई औरतें आती हैं और अपनी साड़ी का पल्ला देती हुई गाती नाचती हैं। इस समय भी दांतण गाया जाता है। हमारे गाँव कानोड़ में उदावतों के घर यह रस्म पूरी की जाती थी। ढोलन को इस अवसर पर पांच सेर धान तथा कापड़ा दिया जाता था। इसके दो-तीन दिन बाद फिर ढोलन पूरे गाँव में घर-घर घूमती और ढोल बजाकर अक्याणा (धान चून) प्राप्त करती। विगत कुछ वर्षों से तो यहाँ गणगौर का वह त्यौहार ही नहीं मनता है। न अब राज की गणगौर की सवारी निकलती है न हाजी की गणगौर ही दिखाई देती है। श्री सुखलालजी, भेरुलालजी उदावत ने बताया कि जनता राज्य में इस प्रकार के जितने भी त्यौहार हैं उन्हें फिर से पुनर्जीवित करने की बड़ी आवश्यकता है। इन त्यौहारों के अभाव में सारा गाँव लूखा सूखा और फीका-फीका सा लगता है।

गणगौर का टूंट्या :

'दांतणहेला' के दिन रात्रि को महिलाएँ गणगौर का 'टूंट्या' निकालती हैं जिसमें वर-वधू की शादी का दृश्य दिखाया जाता है। इसमें वर प्रायः छोटा तथा वधू बड़ी होती है। वर बननेवाली वर की पूरी पोशाक धारण करती है तथा वधू बननेवाली वधू की। आगे-आगे ढोल की जगह फूटा कनस्तर बजाया जाता है। वर-वधू की यह बनोली देखते ही बनती है।

गौर का अपहरण :

गणगौर के दिनों में इस बात का पूरा ध्यान रखा जाता था कि गणगौर को कोई उड़ा न ले जाये। यह किसी अपहरणकर्त्ता के हाथ न पड़ जाय। एक तो इनका पहनावा तथा जेवर ही बहुमूल्य होता था। दूसरा यदि कोई इसे छीनकर ले गया तो यह एक प्रकार से पराभव तथा बेइज्जती समझी जाती थी इसलिये प्रायः सभी जगह ठिकानों में गणगौरों पर कड़े पहरे थे। लेकिन बावजूद कितने ही पहरे के कुछ घटनायें हमें ऐसी मिलती हैं जहाँ भरे जुलूस में गणगौर को उड़ाई गई। इससे गणगौर उड़ाकर लेजानेवाले ठिकाने की जहाँ विजयश्री गौरवान्वित हुई वहीं जिस ठिकाने की गणगौर छीन ली गई उसकी

जनता जनार्दन में पराजय तथा नीची निगाहें रहीं। गणगौर अपहरण संबंधी दो-एक दिलचस्प घटनाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है।

उदयपुर की गणगौर के साथ-साथ गोगुन्दा की गणगौर भी बड़ी नामी रही है। गणगौर उत्सव के दिन जब मैं यहाँ की गणगौर तथा तत्संबंधी मेले को देखने गया तो यहाँ के वयोवृद्ध भेरूलालजी पुरोहित ने मुझे बताया कि गोगुन्दा की गणगौर कोटा से उड़ाकर लाई हुई है। उन्होंने बताया कि यहां के कुंवर लालसिंहजी बड़े रोबीले, स्वतंत्र प्रकृति के तथा घुमक्कड़ प्रवृत्ति के थे। एक समय उदयपुर के महाराणा स्वरूपसिंहजी के सामने कोटा की गणगौर की तारीफ हुई तब महाराणा ने फरमाया कि तारीफ तो बहुत करली गई मगर कोई माई का लाल उस गणगौर को तो लाकर दिखाये! बिना उसे देखे कैसे पता चले कि वह गणगौर कैसी है? महाराणा साहब का हुक्म सबके लिये चुनौती बन गया। बीड़ा फेरा गया कि कोई हिम्मतवर हो जो कोटा की गणगौर उड़ाकर लाये। बीड़ा किसी पुरुष ने नहीं झेला तब वीरवर लालसिंह ने उसकी इज्जत रखी और ठीक गणगौर के दिन अपने घोड़े पर सवार हो कोटा पहुँचा। दरबार गणगौर की मजलिस का आनन्द ले रहे थे। उसी समय लालसिंह ने कहलवाया कि एक घुड़सवार घोड़े पर गणगौर नचाने में बड़ा प्रवीण है। यदि दरबार की इजाजत हो जाये तो वह अपना करिश्मा दिखा सकता है। दरबार ने सोचा कि घोड़े पर गणगौर नचानेवाला न तो सुना गया और न आज तक देखा ही गया। यदि वह यहां हाजिर है तो उसका कमाल देखने में क्या हर्ज है फलतः उन्होंने इजाजत दे दी। लालसिंह तो इसी अवसर की टोह में था। वह अपने घोड़े सहित पहुँचा। उसने पहले गणगौर को धीरे-धीरे घुमाई और फिर धीरे-धीरे घोड़े की चाल बढ़ाता गया। एक समय ऐसा आया कि उसने घोड़े को एड़ दी और घोड़ा छलांगे मारता हुआ वहां से नौ दो ग्यारह हो पड़ा। लोग हक्के बक्के हो देखते रह गये कि कैसे क्या हो गया! लालसिंह ने महाराणा को गणगौर लाकर दी। महाराणा ने उसे शाबाशी दी और पुरस्कार स्वरूप वही गणगौर दे दी जो आज भी गोगुन्दे के ठिकाने में सुरक्षित है।[1]

रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत के देवगढ़ में भी गणगौर की प्रतिमा इसी प्रकार छीनकर लाई गई। इस संबंध में स्वयं रानीजी लिखती हैं कि देवगढ़ के

---

[1] लेखक द्वारा गोगुन्दा की यह यात्रा १५ अप्रैल ७५ को गणगौर के दिन की गई। इस दिन यहां गणगौर की सवारी देखी गई तथा रात्रि को भरनेवाले गणगौर मेले का आनंद भी लिया गया।

पास ही बरजाल नामक गाँव है। वहाँ कुल आबादी रावतों की है। उन दिनों इन रावतों का पेशा चोरी करना व लूटना ही था। दूसरी कमाई या खेती ये करते ही नहीं थे। पहले इन्हें मेर कहा जाता था। इन्हीं मेरों के नाम से अजमेर मेरवाड़ा कहलाया। बरजाल के रावत चोरी और लूटपाट करने में बड़े प्रसिद्ध रहे हैं। अब तक किसी तेजतर्रार, चालाक तथा चोर आदमी के लिये 'फलाणो पूरो बरजालियो है' शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं। बरजाल में जाला नामक रावत को उसकी भोजाई ने किसी बात पर ताना दे दिया था कि ऐसी तू कौनसी जावद की गणगौर लायेगा[1]।

जावद एक बड़ी जागीरदारी थी। वहां की गौर की प्रतिमा सुंदरता के लिये प्रसिद्ध थी। जाला रावत को अपनी भोजाई की बात चुभ गई। घोड़े पर सवार हो हाथ में भाला ले जावद जा पहुँचा। गणगौर की सवारी निकली। जाला रावत ने गजब की हिम्मत की। भरी सवारी में अपने भाले पर मूर्ति को उठा लिया। भाले पर मूर्ति टांगे और सरपट घोड़ा दौड़ाता बरजाल आ गया। बरजाल जावद से दूर और विकट पहाड़ियों के बीच में बसा है इस कारण जावदवाले पता ही नहीं लगा सके कि कौन आया और कौन ले गया। जाला ने जावद की गणगौर ला अपनी भाभी को दी। रावतों के यहाँ बड़े सम्मान से इसकी पूजा हुई। अब भी रावतों के तथा आसपास में स्त्री के लिये 'फलाणी तो जावद री गणगौर व्हियां बैठी है' कहावत प्रयुक्त की जाती है। कालान्तर में वही प्रतिमा हमारे यहाँ देवगढ़ में रावतों के यहाँ से ले आये।[1]

श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख करते हुए अपने एक पत्र में मुझे लिखा कि जोबनेर के समीपस्थ सिंहपुरी का रामसिंह खंगारोत सरदार जो सीकर ठिकाने का फौजदार था, मेड़ता नगर की गणगौर बलात अपहृत कर ले गया था। गाँवों में ग्राम स्वामी के घर से गणगौर की जो सवारी निकलती है, गांव के सब लोग भाले, बंदूक, तीरकमान, लाठियों तथा सुन्दर वस्त्रों से सज्जित होकर ईश्वर गणगौर के पीछे-पीछे सुरक्षा के लिये चलते हैं। गौर के अपहरण की सुरक्षा ही इस प्रबंध का मूल कारण है।[2]

---

1 खेलण दो गणगौर ओ पन्नामारू; रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत, मरुभारती, जुलाई ६४ पृ० २२।

2 श्री शेखावत द्वारा चौपासनी (जोधपुर) से लेखक के नाम लिखे गये १९-५-७७ के पत्र से।

गणगौर पर रानीजी के दर्शन :

पहले राजप्रासादों–रावलों में गणगौर दर्शन का आनंद ले महिलाएँ रानीजी के दर्शन करने जाती थीं। इस दिन रानीजी को देखनेवाली महिलाओं की भीड़ की भीड़ उमड़ पड़ती। रानीजी इसदिन बहुमूल्य पोशाक में सजी रहतीं। उनका सारा शरीर सोने के आभूषणों से लदा रहता। अपने गाँव कानोड़ की वह घटना मुझे अब भी याद है जब रावले में गणगौर को देखने के बाद मेरे पाड़ोस की सभी महिलाओं के साथ मेरी माँ भी रानीजी के दर्शन को जानेवाली थीं। तब मैंने भी मां को उनके साथ चलकर रानीजी के दर्शन की बात कही थी और उनके साथ भी हो गया था पर पहले दरवाजे में ही खड़े व्यक्ति द्वारा मुझे भीतर नहीं जाने दिया गया। बताया गया कि बड़े बच्चों का प्रवेश भीतर वर्जित है। मैं मुश्किल से उस समय कोई आठ नौ वर्ष का रहा होऊंगा। मैं बाहर ही खड़ा रह गया। माँ ने लौटने पर मुझे कहा कि भीड़ इतनी पड़ रही कि किसी का थाह ही नहीं लगता। यदि मैं चला भी जाता तो दिसल दिया जाता और संभवत: रानीजी के दर्शनों से भी वचित रहता। पर माँ रानीजी के ओढ़ाव पहराव और गहने गांठे की जो बात सुना रही थी वह तब मेरे जैसे बच्चे के लिए अकल्पनीय थी। वर्ष में यह एक ही दिन महिलाओं के लिए ऐसा होता जिसदिन वे रानीजी के 'दरसण' कर अपने को धनभाग मानती हुई आत्मिक आनंद प्राप्त करतीं।

वस्त्राभूषणों की चाह :

महिलाओं द्वारा रानीजी के दर्शन का यह संदर्भ आज जब मैं यह लिखने बैठा तो मेरे मन पर सार्थक हो आया है। अब मुझे यह लग रहा है जैसे कि ऐसे सामाजिक लोकसंदर्भ कितने सार्थक हुआ करते हैं। यह बात अलग है कि हमें जब उनके सूत्र हाथ नहीं लग पाते हैं तो वे हमें निरर्थक हुए लगते हैं। काठ की गणगौर के दर्शन और फिर जीती जागती गणगौर–रानीजी के दर्शन कर महिलाएँ अपने को भी तो ऐसी ही रंगीली, रूपहली, छैलछबीली गणगौर मान बैठती हैं। गणगौरवत् होने–बनने के लिए तो उनका सारा गणगौर पूजा–अनुष्ठान चलता है। मुझे खेलण दो गणगौर भंवर म्हाने खेलण दो गणगौर' गीत याद आ रहा है जिसमें औरतें अपने प्रियतम से गणगौर खेलने जाने को कहती हैं। उनकी अन्य सहेलियाँ उनकी बाट जो रही हैं इसलिये वे भी गणगौर रमने जाना चाहती हैं परन्तु वे केवल यही नहीं चाहतीं कि उन्हें पति की स्वीकृति मिल जाये। वे स्वयं रानीजी जैसे वस्त्राभूषण पहनकर जाना चाहती हैं इसलिये फरमाइश कर बैठती हैं–सिर के लिये मेमद लाइये। रखड़ी के रतन दिलाइये। कानों के लिये झालज लाइये। झूटणों के जोळ चढ़वाइये। मुख

के लिये बेसर लाइये। ढीलड़ी के बरद्द कटवा दीजिये। हिवड़ा के लिये हांसज लाइये। तमण्ये के पाठ पोवा दीजिये। बायों के लिये चूड़ला तथा हाथों के लिये हथफूल लाइये। गजरों के मजरे दिला दीजिये। कड़ियों के कसूमल तथा केसरिया के कोर दिला दीजिये। पगल्यों के लिये पायल लाइये। घूघरों के घमच दिला दीजिये। अंगोठे के लिये अणवट लाइये तथा बिछियों के डांडी लमवा दीजिये।

कितने-कितने आभूषण होते हैं! कितनी-कितनी मांगें होती हैं! गृहरानी राजरानी का स्वप्न पूरा करती हैं इन गीतों से, नृत्यों से और हरख मनाती हैं, आनंदित होता हैं। लोकमन, लोकजीवन ने भौतिक सुख को कहाँ महत्व दिया है। महत्व तो अन्तः सुख का है। जहाँ भौतिक ऋद्धि, सिद्धि, संपन्नता, समग्रता होती है वहाँ अन्तर्मन बेबस, बोझिल और टूटा घूटा हुआ होता है। मन की उन्मुक्तता वहां नहीं होती। इस दृष्टि से गीतों, नृत्यों, त्योहारों, उत्सवों और अनुरंजनों भरा यह लोकजन कितना सुखी, स्वच्छन्द और सुभाग भरा होता है। गणगौर त्योहार की भी यही सबसे बड़ी उपलब्धि और सार्थकता कही जा सकती है।

गणगौर की भावभीनी विदाई :

गणगौर की विदाई का दृश्य बड़ा ही कारुणिक होता है। इसकी विदाई बरबस ही उस कन्या की विदाई का स्मरण करा देती है जो विवाह के बाद अपने घर से विदा लेती है। इस रूप में यह गणगौर भी एक कन्या ही है जो अपने घर से श्वसुरगृह पदार्पण करती है। इस समय गणगौर-ईसर की प्रतिमा अपने सिर पर लिये दो महिलाएँ गृह-द्वार पर खड़ी रहती हैं। घर की स्त्रियां उन्हें बादस्तूर विदा देती हैं। ईसर को जवारी का रुपया नारियल देती हैं जैसे जंवाई को विदा करते समय जवारी दी जाती है।

विदा हुई गणगौर धीरे-धीरे चलती है। वह थोड़ी दूर जाती है और पुनः पीछे मुड़कर झांकती है। वह पुनः पुनः बढ़ती है और पुनः पुनः मुड़-मुड़ कर देखती है। इस समय औरतों की आँखों से आंसू छलक आते हैं। वे उसी तरह बिलख पड़ती हैं जैसे अपनी लड़की की विदाई के समय बिलख पड़ती हैं। नव विवाहिताओं को अपने पीहर की विदाई स्मरण हो आती है। वे भाव विह्वल हो उठती हैं। कुमारिकाओं की सर्वस्व बिछुड़ जाती हैं। केवल सौलह दिन ही तो हुए हैं। सौलह दिन की घर आई महमान को आज ईसर लेकर चल पड़ा है। सारे समय जिसके संग-संग रहती थीं। जिसे पूजे बिना भोजन

नहीं करती थीं, आज वह सबको अकेली छोड़ सबसे विदा हो गई है। इसी भावना में सबके कंठ फूट पड़ते हैं—

म्हारे सौला दिन रा आलम रे
ईसर ले चाल्यो गणगौर।
म्हैं तो पूजण रोटी खाती रे
ईसर ले चाल्यो गणगौर।।

राजघरानों में गणगौर की विदाई के पूर्व रानीजी थाली में दूब पानी रखकर उसे पिलाती हैं। कंकू काजल के टीले टपके करती हैं और तब डावड़ियाँ उसे वराने (विर्सजित करने) ले जाती हैं। जाते समय गणगौर अपनी धीमी-मधरी चाल में एक कदम आगे बढ़ती और पुनः मुड़ मुड़कर सबको देखती हुई विदा लेती है। तब एकत्रित सारा जनसमुदाय करुणा के सागर में डूबा हुआ लगता है। बेटी की विदाई का यह दृश्य फूट फूट कर रोने, आँसूबहाने में समाप्त होता है। रानीजी-रावजी अपलक उसे देखते रह जाते हैं। गणगौर की यह विदाई केवल महलों की बेटी की विदाई नहीं है। यह तो सारे गाँव की बेटी की बिदाई है तभी तो उस विदाई में सबके मन गीले हो उठते हैं।

काजल, सिंदूर, मेंहदी, रोली से गणगौर की पूजा कर सधवायें उसके नैत्रों में काजल डालती हैं। उसके सिन्दूर को अपनी माँग में भरती हैं और उसके चढ़ी रोली को कपड़े में बांध उसके सौलह गांठें लगाकर अपने बाजू पर बांधती हैं। इसे वे पार्वती की भांति अटल सुहाग की प्राप्ति मानती हैं। बिसर्जन के समय मार्ग में यदि कोई पुरुष मिल जाता है तो उसका मिलना स्वयं उसी के लिए बड़ा अनिष्टकारी समझा जाता है। ऐसी स्थिति में छ माह के भीतर उसकी मृत्यु होगी समझ लिया जाता है।

मिट्टी की गणगौरें :

काठ की गणगौरों के साथ कहीं-कहीं मिट्टी की छोटी-छोटी गणगौरें पूजी जाती हैं। मिट्टी के बने ये ईसर गणगौर भी बड़े कलात्मक होते हैं। विसर्जन के दिन बड़ी गणगौर के साथ इन्हें भी विर्सजित कर दिया जाता है। कहीं कहीं ये मिट्टी की गणगौर तो विर्सजित करदी जाती हैं पर काठकी गणगौरें वापस ले आई जाती है। ऐसी स्थिति में उनके धड़ को कपड़े में छिपाकर उन्हें सिर पर उल्टे मुँह खड़ी कर दी जाती हैं। जिधर उन्हें लेजाई जाती हैं उधर उनका पीठ भाग रहता है। घर लाकर उनके पूरे शरीर को किसी बोरी-लप्पड़ में छिपा दिया जाता है। जब तक अगली गणगौर नहीं आ जाती है तब तक इन्हें न कोई छूता है और न कोई देखता ही है। इन्हें छूना और देखना दोनों ही अनिष्टकारी कहा जाता है।

गौरी की प्रतिमा विसर्जित करते समय औरतें दाम्पत्य सुख का वरदान मांगती हैं। साथ ही विनोदमय ढंग से अपने पति के नाम का उच्चारण करती हैं। वैसे हमारे यहाँ पत्नी के लिये पति का नाम लेना वर्जित है परन्तु ऐसी मान्यता है कि गौरी के सम्मुख उसका नाम लेने से उसे अखंड सौभाग्य और सुख की प्राप्ति होती है। अतः इस पवित्र भावना के फलस्वरूप वे अपने पति का नाम ले लेती हैं। विसर्जन के अवसर पर कहीं-कहीं बालिकाएँ अपनी गणगौरों को चांदी के छल्ले से पानी पिलाती हैं।

गणगौर के पश्चात राजस्थान में लगभग तीन माह तक कोई त्यौहार नहीं आता। इसीलिये यहाँ यह कहावत चल पड़ी कि 'तीज तिवारां बावडो ले डूबी गणगौर।'

गणगौर का नख-शिख वर्णन :

वरदेवी–सौभाग्यदेवी यह गणगौर कोई सामान्य गणगौर नहीं है। उसके सिणगार और रूप लावण्य की कोई समानता नहीं। उसकी पहचान सबसे निराली है। उसके शीश पर मेमद शोभित है। रखड़ी की शोभा का तो कहना ही क्या! चंद्रगौरी, रूपगौरी जब रत्नों की गलियों में चलती है तो लगता है जैसे कोई हथिनी घूम रही हो। उसके हाथ में कमल का फूल सुशोभित है। उसका शीश नारियल जैसा, वासुकि नाग सी उसकी वेणी, चार अंगुल का उसका विशाल ललाट, रत्नदीप्ति आंखें, भ्रमर गूंजित भौंहें, सुआ–चोंच सी नाक, मसूड़े मानों लालें जड़ीं, दाड़िम के दानों से दांत, सांचे में ढला सुघड़ हृदय, वज्र सी छाती, दामिनी सी दमकती पीठिका, पीपल के पत्ते सा पेट, मूंगफली सी अंगुलियां, चंपा डाल सी भुजाएं, रूपमयी पिंडलियां, देवमंदिर के स्तंभ सी जंघाएं, दर्पण सी दमकती एड़ी, सठवां सूंठ सा पंजा, घैर घुमाळा घाघरा और दखणी चीर ओढे कैसी रूप लक्ष्मी लग रही है। गणगौर की ओपमा में दी गई ये उपमाएं कितनी सटीक और लोकमन की मांगल्य थाह लिये हैं।

गणगौर पर 'दौड़ों' का आयोजन :

गणगौर के दिन सायंकाल जगह–जगह ऊंटों, घोड़ों की तथा घुड़बहलों की दौड़ आयोजित की जाती है। इस दौड़ में अच्छे–अच्छे सजेसजाये ऊंट, घोड़े होते हैं। इस दौड़ में आसपास के लोग भी अपने–अपने ऊंट–घोड़े लिये सम्मिलित होते हैं। किसी समय तो ऊंट–घोड़ों की दौड़ गणगौर त्यौहार का प्रमुख दर्शनीय रूप हो गया था। इनमें भी घोड़ों की दौड़ का विशेष महत्व था। इसका एक कारण यह भी था कि घोड़े सभी जगह आसानी से उपलब्ध हो जाते थे जबकि ऊंट नहीं। इसलिए यह कहावत भी चल पड़ी कि 'गणगौर्‌यां ने ई

घोड़ा नीं दौड़ेला तो कद दौड़ेला ?' इस अवसर पर ऊंट तथा अश्व सवारों की ओर से मेख उपड़ाई तथा निशानेबाजी जैसी कलाओं के प्रदर्शन भी आयोजित होते थे ।

गणगौर पर प्रियतम का आह्वान :

शाम को औरतें समूह रूप में सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो 'पीरूवले' खेलने जाती हैं जहां विरहिणी औरतें—'अनोखा कंवरजी हो सायबा झालो देऊं घर आय' गीत के साथ-आमने सामने कतारबद्ध खड़ी होकर अपनी साड़ी के पल्लों का झाला देती हुई अपने प्रियतम का आह्वान करती हैं । प्रियतम को गणगौर पर बुलाने के और भी कई गीत प्रचलित हैं जिनमें विरहणियों की स्वाभाविक मनोदशा का चित्रण मिलता है । पति की प्रतीक्षा में उनकी खुशहाली का तो कहना ही क्या ! गीतों में कितनी उत्कंठा आतुरता परिलक्षित होती है अपने प्रियदर्शन की ! कितने स्वप्न संजोये रहते हैं प्रिय आगमन के ! प्रियतम की आवभगत में किसी तरह की कोई कसर नहीं रखी जायगी । बागों में उनके डेरे दिलवाये जायेंगे । आम वृक्ष के उनका घोड़ा बांधा जायगा । डाली-डाली दीपक सजोया जायगा और पत्ते-पत्ते घोड़े का जीण उतारा जायगा । कितनी खुशियां और आनन्द है उनके मन में ! वे इन कल्पनाओं से फूली नहीं समा रही हैं ।[1]

गौर का उद्यापन :

राजस्थान में गणगौर का त्यौहार चैत्रकृष्णा प्रतिपदा से चैत्रशुक्ला तृतीया तक मनाया जाता है । ऐसा माना जाता है कि गणगौर अपने पूर्व जन्म में

———

[1] आप गणगौर्यां पधारो ओ रसिया
बागां में डेरा देवावांगा ।
बागां में डेरा देवावां ओ रसिया
आंबे आंबे घोड़ला बंधावांगां ।
आंबे आंबे घोड़ला बंधावां ओ रसिया
डाले डाले दीवला जुपावांगा ।
डाले डाले दीवला जुपावां ओ रसिया
पाने पाने जीण उतारांगा ।
पाने पाने जीण उतारां ओ रसिया
आनंद हरख मनावांगा ।।

दक्ष की पुत्री सती और ईसर महादेव थे। सती सत्रह दिन की साधना के बाद गौरी के रूप में सरजीवित हुई। इसीलिये सत्रह दिन तक गणगौर पूजने-मनाने का क्रम आज तक भी चला आ रहा है।

गौर के ऊजीणे (उद्यापन) के लिए द्वितीया के दिन उद्यापनकरने वाली की ओर से सत्रह महिलाओं को उद्यापन भोज के निमन्त्रण के फलस्वरूप मेंहदी और दतौन भेजा जाता है। गणगौर के दिन इन महिलाओं को खीर, पुड़ी, हलवा आदि पकवान का भोजन करा कर उनमें से प्रत्येक को काँचली दी जाती है। ये सभी महिलायें गौरड़ी' कहलाती हैं। उद्यापन पूरा हो जाने के बाद वह महिला गणगौर नहीं पूजती है। यदि कोई औरत जीते जी उद्यापन नहीं करा पाती है तो उसके मरने के पश्चात् उसके मृतक भोज-परसादों पर सत्रह औरतों को आमन्त्रित कर उन्हें एक-एक कांचली (कचुकी) दी जाती है।
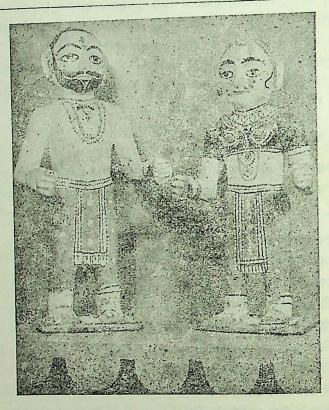
कलामंडल संग्रहालय में प्रदर्शित ईसर-गणगौर की काष्ठप्रतिमाएँ

ब्यावला वर्ष :

ब्यावला वर्ष विवाह वाला वर्ष कहलाता है। इसके अनुसार जिस लड़की का विवाह होली से पहले कर दिया जाता है उसे उस वर्ष गणगौर का पूजन करना आवश्यक हो जाता है। तदनुसार नवविवाहिता अपने पास-पड़ौस की पांच, सात, नौ अथवा ग्यारह लड़कियों को न्यौते के रूप में एक-एक गुड़ की डली अथवा लड्डू देकर अपने साथ गौरी पूजन के लिये तैयार कर लेती हैं।

गणगौर का भित्तिचित्र :

इस दिन औरतें अपने-अपने घरों में गणगौर का भित्तिचित्र बनवाकर उसकी विधिवत् पूजा करती हैं। यह भित्तिचित्र पार्वती के महल का होता है। इसमें भीतर प्रवेश के लिए ६४ सीढ़ियां बनी होती हैं। दरवाजे के दोनों ओर कांगरे होते हैं। ऐसी किंवदंती है कि जो स्त्री अपनी तपस्या द्वारा इन सीढ़ियों को पार कर लेती है वही पार्वती तक पहुंच सकती है। महल के अन्दर पार्वती आसीन हैं। इनके दोनों ओर उनकी दासियां चंवर ढ़ोल रही हैं। पार्वती के दोनों हाथों में कमल के फूल तथा पास में आठी लपेटी हुई उनकी कांगसी हैं। पूजा के समय स्त्रियां पार्वती के चारों ओर कंकू के टीले-टपके करती हैं तथा उनके पास ही नीचे की ओर सात्या बनाती हैं। पार्वती के इस पूजन के साथ-साथ मिट्टी के पाँच समचौरस पछेटे, चकलोटा बेलण, नगारखाने की ढोलन व आम तोड़ता हुआ पुरुष बनाकर भी पूजा जाता है। इसदिन औरतें व्रत रखती हैं तथा गणगौर की कहानी कहती हैं। गौर के भितिचित्र में कहीं-कहीं केले के पेड़ के पास ईसर-गौरी चोपड़ खेलते दिखाये जाते हैं। कहीं ईसर के सामने गौरी हाथ जोड़े बैठी दिखाई जाती है। गौरी के पीछे उसकी सहेलियाँ खड़ी होती हैं। ईसरजी काली दाढ़ी लिये राजसी वेश में होते हैं। पूजा के समय चित्र के रोली, काजल, मेंहदी की सौलह-सौलह बिंदियां दी जाती हैं। अपने हाथ में दूब लिये उससे पानी के छींटे देती हुई महिला-लड़कियाँ 'ईसर पूजूं पारपतीजी' गीत गाती हैं।

गणगौर की कहानी :

गणगौर के थापे (भित्तिचित्र) की पूजा कर औरतें कहानी कहती हैं और तदनंतर अपना व्रत खोलती हैं। गणगौर संबंधी जो कहानी कही जाती है

उसके कई रूप, प्रकार सुनने को मिलते हैं। ब्रज, राजस्थान, निमाड़, मालवा, महाराष्ट्र, गुजरात सभी जगह की जुदा-जुदा कहानियाँ हैं। यहा कुछ कहानियां द्रष्टव्य हैं।

राजस्थान में गरागौर की जो कहानियाँ प्रचलित हैं उनमें से दो कहानियाँ यहाँ दी जा रही हैं।

(१) शंकर और पार्वती भ्रमण करते-करते जंगल में कहीं बहुत दूर निकल गये। चैत्र की भयंकर गर्मी की वजह से पार्वती के लिये यह भ्रमण असह्य हो गया। उन्हें जोर की प्यास लगी तो शंकर को कहा। शंकर ने आकाश की ओर देखा तो एक दिशा से उन्हें पक्षियों का कलरव सुनाई दिया। उन्होंने सोचा कि उधर कोई जलाशय होना चाहिये। वे वहाँ पहुँचे। पानी से तालाब भरा हुआ था। उन्होंने उससे जल लेना चाहा परन्तु प्रथम अंजलि में जवारा, दूसरी में पलास पुष्प तथा तीसरी अंजलि में आटे का पकवान आया फलत: पार्वती जल ग्रहण नहीं कर सकी। उन्होंने शंकर से इन विघ्नों का कारण जानना चाहा। शंकर ने कहा कि आज चैत्र शुक्ला तृतीया है। सभी सौभाग्यवती औरतें तथा सौभाग्यकांक्षिणी कन्याएं व्रत कर रही हैं और तुम हो कि जंगल में भटक रही हो। यह सुन पार्वती ने भी व्रत करना चाहा ताकि सौभाग्य कामना करने वाली औरतों को आशीर्वाद दे सके। शिवजी ने वहीं अपनी अलौकिक शक्ति से एक नगर का निर्माण कर दिया। पार्वती ने वहीं गणगौर की विधिवत् पूजा की और पूजा के लिए आई औरतों को आशीर्वाद दिया।

ए पार्वती माता जैसा आशीर्वाद तुमने उन औरतों को दिया वैसा ही सबको देना।[1]

(२) एक बार एक राजा ने अपने खेत में जौ और चने बोये। उसी राजा के राज में एक माली ने अपने खेत में केवल दूब बोई। दोनों के खेत लहलहा उठे पर कुछ दिनों के बाद माली के खेत की दूब कम पड़ने लगी। माली को इससे बड़ी परेशानी हुई अतः राजा से उसने अपनी सारी घटना कह सुनाई। राजा को भी यह सुन बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने माली से कड़ी निगरानी रखने और चोर का पता लगते ही उसे सूचना देने को कहा। माली रात भर जागता

---

1 थोड़े बहुत रूपान्तर के साथ इसी कथा का एक रूप देखिये-'भारतीय साहित्य' के अक्टूबर १९६० के ब्रज के लोकव्रतानुष्ठान वाले अंक में पृ० ३६ पर। इसी अंक में पृ० ३४ पर ब्रज में प्रचलित गणगौर की कहानी भी द्रष्टव्य है।

रहा पर उसे चोर हाथ नहीं लगा। सुबह हुई तो लड़कियों का झुण्ड आया और उसने दूब चूंटना प्रारम्भ कर दिया। माली दौड़ा-दौड़ा उनके पास पहुँचा और उनके आभूषण छीन लिये। लड़कियों ने बड़ा अनुनय विनय किया और कहा कि वे गणगौर पूजा के लिए दूब ले जा रही हैं। इस पर माली ने उनके आभूषण लौटा दिये और यह तय रहा कि वे माली को दूब के बदले में गणगौर का पूजापा लाकर देंगी।

लड़कियां अपने वादे के अनुसार पूजा कर पूजापा लेकर आईं पर माली कहीं बाहर गया हुआ था फलतः माली की मां ने उनसे पूजापा लेकर मिट्टी के बर्तन में रख दिया। जब माली लौटा तो उसे सारी बात कह सुनाई। दिन-

माटी के कलात्मक ईसर : सबकी जोड़ी अमर रखे
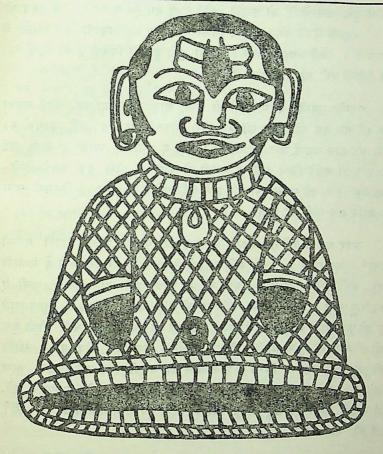
भर की थकान के बाद माली को बड़ी भूख लग रही थी अतः उसने लड़कियों वाले प्रसाद को खाने की चाह की। मां ने प्रसाद लेने जब बरतन का ढक्कन खोलना चाहा तो वह नहीं खुला। तब उसने बरतन की पूजा की। इससे ढक्कन खुल गया पर प्रसाद की जगह गौरी और ईसर को बैठे पाया। मां-बेटे दोनों इस घटना से बड़े आश्चर्य में डूब गये। उन्होंने जब घर के चारों ओर देखा तो जगह-जगह उन्हें रत्न पड़े मिले। दोनों ने गौरी ईसर के हाथ जोड़ते हुए कहा कि जैसा फल हमें दिया है वैसा ही सबको देना।

पूना से श्रीमती मालती शर्मा ने ग्वालियर की ओर प्रचलित गणगौर की कहानी मुझे लिख भेजी जो उन्होंने कोई सत्रह वर्ष पूर्व पासड़ गांव से एकत्र की थी। कहानी भेजते समय उन्होंने लिखा कि उधर यह कहानी कई पाठों में मिलती है। कई जगह इसमें कई कड़ियां टूटी हुई भी मिलती हैं पर उन्हें जो पूरी कहानी लगी वह इस प्रकार है—

गनगौर गनगौर चैतमास पै लो पाख, आम फरे महुआ फरे चकई चकवा केल करें बरू देस की चिन्ता खों चले गौरा पारवती संग लग लईं, बइयर की जाति संग नानै लगाई जात हंगासी ऐ मुतासी ए भूखी ऐ प्यासी ए उन्ने कई नईं हम तो चलेंगे बिन्ने कई नईं मान्ती तो चलो। थोरी दूर चलकें बोलीं— 'बरू बरू हमें तो प्यास लगी ऐ' उन्ने कई जाई सें तो कहत रहे कि जनी मांस की जाति संग नानै लई जात।

ऊपर चढ़ कें देखें तो सरगन से ताल भरे पुरइन झालरो टोरौ मरोरौ खोना[1] भर ल्याईं। बिन्ने कही जा इत्ते से पानी से अग्यारी करों कै मग्यारी करों करों सूरज एैं जल दओं के मैं पिओं इतै तो इतनोईं पानी ऐ चायं कछू करौ। पहली चूरूं लओ दूब को पौड़ा आड़ो, भयो दूजौ चुल्लू लओ तेसू को फूल आड़ो भयौ, तीसरो चूल्लू लयो जौ की बाल आड़ी भयी, चौथो चुरू लओ तो गुना को टूंक आड़ो भयौ, गौरा बोंली बरू बरू पोथी पुरान खोलि देखो आजु तो काऊ को बिरत ए उन्ने खोले तो 'गनगौर चैत मास पिछनो पाख तीज' उन्ने पूछी जाको कहा कीजै 'सोलौ गुना आपकूं सोलौ गौर गुंसाइन खों, सोलै क्वारी कन्ना खों, टेसू को फूल जौ की बाल, दूब को पोंड़ा गोबर से लीपैं माटी की गौर बनावे।'

---

[1] दौना।

पूजि कें खड़ी भईं उन्ने कही अब सोरा[1] कौने दऊं? तो रस्ता में एक लकड़िहारो जारओ तो उन्ने कही तू मेरो भइया तू मेरो बीर तू मेरों सोरा लै लै। विन्ने कई लै तो लैंग बैनि परि मेरे पास देने को कुछ नइयां। बच्चन के काजें जे गोल पथरा ले जारओ सो बाकी थारी में धर दये। बिनकी थारी में हीरा जवारात है गये बाकी लकरियन में फूल भर उठे। चलत चलत घरें पोंचे वाकी मइयो सात पथरा लैंके दौरी, निपूते कऊ को हरकें लै आओ कैं भूसि कें लै आओ। न हर कें लाओ न भूसकें लाओ गौरा पारवती कौ परसाद ले आओ। उन्ने कई मां हमायें बैन नइयां? उन्ने कही तुमाई बहिनि तो ऐंसी यें जैंसी सब काऊ की होंय वे बोले हमसें अपनी भैनि के जाइगे।

आसन देई रानी तुमाये बीर आउत एं, बावरे लोग बावरो संसार हमाये बीर कायेखों आवें ऊपर चढ़ि देखें तो आइ रहे। दौरी परोसन कें गई मेरी अति को लाड़लो भइया आओ एं कहा की जे? घी में घामर तेल सें चौका-न चौका सूखो न चाऊर सीझे। घी से निकार दूध में डारे खीर खांड़ भोजन करे दिन दो रहे चार रहे कि भैन भैन अब तो हम घर को जाइगे नई भइया और रहो, नई अब तो जाइगे। दौरी दौरी कुम्हार कें गईं कुम्हार कें सें लै आईं लाइकें भइया खो दे दओ गैल गैल जइयो बट पाउं मत दियो नईं गौर गोंसाइन छोड़ि लेगी गौल गौल जाते झटऊबर पाउँ परि गयौ गौरि गोंसाइन आईं लात दई पैट ए[2] छुड़ाय लै गईं। रोउत रोऊत मइयों के पास दई थाप पोंहचे, मेरे बेटा मैंने तो पैलेंईं कही घर दियो तो बाहिर ऊनई बाहिरऊ नइयाँ। मेरी दैन नेतो दओ कि खाओ निबटे न न पहैने निबटे दियो निबटै न लिओ निबटे राड़ ईत्तो घापनी तेरोई पाप लै डूबो।

ऐसी तुमाई भैनएं तो हमऊं जायेंगे आसन देई रानी तुमाई मां आउतएं बावरे लोग बावरो संसार मेरी मां कैसे आमें? डंगा नईं डोली नईं जने दस आंगे नईं जने दस पाछें नईं ऊपर चढ़ि देखें तो हाथ नीम की डार माखी बिड़ात्ति चली आमतें। पटा लिओ फट गओ गडुआ लिओ करुवोहै गओ। मेरी मा कहा व्हारे दिन कहा व्हारे संजोग? मेरी बेटी तेरेंईं आई तो बोलने क्यो देतिएं? उठो मां भोजन करि लेऊ। कैसी ऊं गैया अति की भूंखी टूटी होइगी तो बच्छा बिन चारो कैसे खायगी ऐसी मां अत की भूंखी टूटी होयगी तो बेटी बिन भोजन कैसे करेगी। बेटी तो गनगौर उपासी एं बेटी उपासीए तो मां भी उपासी ऐं मेरी

---

1 सोलह गुने।

2 शायद कोई मंजूषा जैसा मिट्टी का बर्तन।

माँ गनगौर उपासी रातीं (रहती) होतीं तौ ऐसी गतन सें चों फिरतीं, मेरी बेटी तेरेई नगर में ग्राई तो बोरि बोरि बोलने काये के लाने देत ऐं एकई वेर दै लै।

मेरी मां गनगौर उपासी ग्रो तो दौरि जाऊ माटी ल्याऊ, दौरि जाय गोबर लाऊ जौ की बालि लाऊ दूब को पौड़ा लाऊ टेसू को फूल लाऊ समद जाय बानी लाऊ लीपो पोतो गनगौरि बनाऊ। माटी कों जातिग्रों खदानों उगसत ए गोबर को जाते गइया लात देति ऐं जौ की बालि कों जातिग्रो टीटई टिटाउत ऐं टेसू के फूल कों जाते नाहर ढूंकत ऐं पानी खो जात ए समद लहरात ऐं लाइकें पिरिया[1] पटकि दई मेरी बेटी मोय तो तेरे नगर में कछू नायं मिलतुई।

करइया (कढ़ाई) ते उठि गईं, दौरि गईं माटी लाईं दौरि गईं गोबर लाईं, दौरि गईं दूब लाईं टेसू को फूल लाईं जौकी बालि लाईं समद गईं पानी लाईं लीपो पोतो गनगौरि बनाउ बेटी नैं पूजि गईं मां पूजतीं कि उल्टि कें गौर कुंड में गिरतिऐं, उन्ने कही पनमेसुरी ऐसी का करति ऐं दै मेरी मा को तैसो को तैसौ। तोइ दउं तेरे बारे कूकराऐं दऊँ परि तेरी मां को मों (मुंह) नईं देखों उन्ने कई पनमेसूरी दै मेरी मा को तैसो कौ तैसो, उन्ने दग्रो ग्ररुग्रा नौन कूनरा तेल, ग्रधाइ खाय न भूखों परै। रूठे ऐं मनाय मईं फटेए सीयें नईं तो कलि-काल कैसे चलै? दे पनमेसुरी मैरी मां कौ तैमे को तैसौ उन्ने दये ग्रारीमारी सोने की किवारीं जहां बैठी बिटिया कान कुग्रारी। कौने भरी लठिया ग्ररगनी भरी कछुटियां देहरी भरी पनइयां।[2]

---

1 डलिया।

2 यह कहानी चैत्र शुक्ला तृतीया को गनगौर की पूजा करते समय सुनी जाती है। दीवाल पर सांतिया बनाते हैं। कुम्हारिन गणगौर दे जाती है। ईसरजी भी होते हैं, मालिन दूब फूल, बेसन और मीठे गेहूं के आटे से गुना (उंगलियों पर लपेट कर छल्ले जैसे) बनाये जाते हैं। १६-१६-१६ तीन जगह। ८ नमकीन आठ मीठे। १ गोद के १ मालिन को मिलते हैं गौर के १ मंस के सास जिठानी बहन या भांजी ननद को दे दिये जाते हैं। सतिया के नीचे १६ बिन्दी मेंहदी की १६ महावर की और कुछ लोगों में सोलह बिन्दी का जल भी लगाते हैं शाम को गौर मालिन ले जाती है। तीन चार बजे गौर को पास में रखे लोटे से पानी पिलाया जाता है। कभी ग्वालियर में गनगौर का मेला बड़ी जोर का लगता था चम्पा बाग में पर अब वो धूम नहीं रही। काछी भोई स्त्रियां नाचती भी थीं वहां। माहेश्वरी और जायसवालों में बेसन का बना जेबर भी गणगौर पर चढ़ाया जाता है। —लेखिका

परिशिष्ट

गणगौर विषयक लोकगीत

यहां राजस्थान में प्रचलित गणगौर विषयक कुछ महत्वपूर्ण लोक-गीत दिये जा रहे हैं। ये गीत कला मण्डल के ध्वनि संकलन विभाग में संग्र-हित, टेपित तथा स्वरबद्ध हैं।

अनोखा कुंवरजी हो सायबा...

अनोखा कुंवरजी हो सायबा झालो दूं घर आव ।
अणी झाला रे कारणे हो सायबा छोड़्या माय ने बाप ।। अनोखा ···
झालो देती लाज मरूं सायबा देखे देवर जेठ । अनोखा ···
माथा ने मैंमद लावजो हो सायबा रखड़ी रतन जड़ाव ।। अनोखा····
मुखड़ा बे बेसर लावजो हो सायबा झालो दूं घर आव । अनोखा····
बैयां ने चूड़लो लावजो गजरा ने मोतीड़ा फंदाव ।। अनोखा····

स्वरलिपि (ताल–कहरवा)

															सा
															अ
नीसा	रेसा	नी़	पध़	नी़नी़	सा	रेगम	—	ग	—	सारे	सानी़	सा	रेग	ग	रेरे
नोऽ	ऽऽ	खा	कुँऽ		जी	ऽऽऽ	ऽ	हो	ऽ	साय	बाऽ	झा	लोऽ	दूं	घर
आ	—	—	सा	सासा	—	रेनी़	ध़	सा	-सा	रेगम	—	ग	—	सारे	सानी़
आ	ऽ	ऽ	व	अणी	ऽ	झाला	रे	का	ऽर	ऽ	ऽ	हो	ऽ	साय	बाऽ
सा	रेग	ग	रेरे	सा	—	सा,	स								
छो	ड्या	मा	यने	बा	ऽ	प,	अ	नोखा कुंवरजी							
×				×				×				×			

शेष गीत भी इसी धुन में गाया जाता है ।

खेलण दो गणगौर...

खेलण दो गणगौर भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।
म्हारी सखियां जोवे बाट भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।।

माथा ने मैंमद लावजो म्हारा माथा ने मैंमद लाव ।
म्हारी रखड़ रतन जड़ावो भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।।

कानां ने झालज लावजो म्हारा कानां ने झालज लाव ।
म्हारे भुठणा झोळ देवावो हो भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।।

सर ने सालूड़ो जो लावजो म्हारे सर ने सालूड़ो लाव ।
म्हारे कंचुवे कोर देवावो हो भंवर म्हाने खेलण दो गणगौर ।।

हिवड़ा ने हांसज लावजो म्हारा हिवड़ा ने हांसज लाव ।
म्हारे तमण्ये पाट पोवावो भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।।

पगल्यां ने पायल लावजो म्हारा पगल्या ने पायल लाव ।
म्हारे बिछियां लूम्ब लगावो भंवर म्हांने खेलण दो गणगौर ।।

स्वरलिपि (ताल--दीपचंदी)

प़ नी़ नी़	सा — सा सा	नी़ सा सा	नी़सा रे गरे ग
खे ल ण	दो ऽ ग ख	गौ र भं	वर म्हां नेऽ ऽ
म ग –	रेसा — रेग मग	रे — —	— — रे ग
खे ल ऽ	णदो ऽ मऽ णऽ	गौ ऽ ऽ	र ऽ म्हा री
मम म गरे	ग — रेसा रे	नी़सा सा सा	नी़सा रे गरे ग
सखि यां ऽऽ	जो ऽ ऽवे ऽ	बाट हो भं	वर म्हां नेऽ ऽ
म – ग	रेसा — नी़ रे	सा — —	— — — सा
खे ऽ ल	णदो ऽ ग ण	गौ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र

—अंतरा—

प़ नी़ नी	सा — सा सा	नी सानी़ —	सा — रे ग
मा था ने	में ऽ म द	ला ऽव ऽ	जो ऽ म्हा रे
म गरे रेग	सा — रेग मग	रे — —	— रे रे ग
मा थाऽ नेऽ	में ऽ मऽ दऽ	ला ऽ ऽ	ऽ व म्हा री
मम म गरे	गग रेसा — रे	नी़नी़ सा सा	नी़सा रे गरे ग
रख ड़ी ऽऽ	रत ऽन ऽ ज	ड़ावो हो भं	वर म्हां नेऽ ऽ
म ग —	रेसा — नी़ रे	सा -- —	— — — सा
खे ल ऽ	णदो ऽ ग ण	गी ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ र
×	२	०	३

शेष अंतरे भी इसी प्रकार गाये जाएंगे।

खींपोली म्हारो खींपां छाई...

खींपोली म्हारी खींपां छाई, तारां छाई रात ।

या नगरी नारेलां छाई, राजा रामचंदरजी रे परताप ।

बिरमादतजी रा ईश्वरदासजी, श्रो म्हारी गोरल घरां ए पूंचाय ।

पूंचास्यां ए डावड्यो ए थें तो घड़ी ए पलक सुस्ताय ।।

स्वरलिपि (ताल–कहरवा, मात्रा–८)

×	०	×	०
ग रे सा —	रे — ग ग	ग रे सा —	सा ग रे सा
खीं ऽ पो ऽ	ली ऽ म्हा री	खीं ऽ पां ऽ	छा ऽ ई ऽ
नि़ सा नि़ सा	रे — सा रे	रे — — —	— — — ग
ता ऽ रां ऽ	छा ऽ ई ऽ	रा ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ त
ग ऽ सा सा	र — ग —	ग रे सा —	सा ग रे सा
या ऽ न	री ऽ ना ऽ	रे ऽ लां ऽ	छा ई रा जा
नि़ सासा नि़ सा	रे रे सा रे	रे — — —	— — — ग
रा मचं द र	जी रे प र	ता ऽ ऽ ऽ	ऽ ऽ ऽ प

शेष गीत इसी प्रकार गाया जायगा ।

भर लावो रे पाणी सागर रो...

भर लावो रे पाणी सागर रो ।।
पाणी जाऊँ तो म्हारे कंकर भागे,
हांरे म्हारे आंगण होद खुदावो रे ।
पाणी सागर रो ।। भर लावो रे ....
श्यामजी री बावड़ी रो खारो-खारो पाणी,
हांरे म्हारे पिछोला रो पाणी अमरतवाणी रे ।
पाणी सागर रो ।। भर लावो रे............
घी ढुले तो म्हारो कछु नहीं बिगड़े,
हांरे म्हारे पाणीड़ो ढुले तो जीव जावे रे ।
पाणी सागर रो । भर लावो रे........

स्वरलिपि (ताल-कहरवा)

			रेग (म)
			भऽ र
ग गरेसा प	रे —रेग मम	ग —सा ग	रे -, रेग (म)
ला वोऽ रे ऽ	पा ऽ णीऽ ऽऽ	सा ऽ ग र	रो ऽ, भऽ र
	अन्तरा		
प — प प	पध धनी ध प	प पध प म	ग — म —
पा ऽ णी जा	ऊँऽ तोऽ म्हा रे	कं ऽऽ क र	भा ऽ गे ऽ
प नी ध प	—पध प म	गरे सारे रेग म	ग गरे सा —
हां रे म्हा रे	ऽ आंऽ ग ण	होऽ ऽऽ दऽ खु	दा वोऽ रे ऽ
रे —रेग म	ग — सा ग	रे —, रेग (म)	
पा ऽ णीऽ ऽ	सा ऽ ग र	रो ऽ, भऽ र	
+	×	×	×

शेष अंतरे भी इसी प्रकार गाये जाएंगे ।

म्हांने थांणो झोंको यूं लागे...

म्हांने थांणो झोंको यूं लागे छै ओ मीठा बोलणी ।
दुपट्टा रो झालो यूं लागे छै ओ मीठा बोलणी ।। म्हाँने........

मेंमद सोवे रखड़ी सोवे ऊपर चम्पा साड़ी ।
हिवड़ा ऊपर हांसज सोवे ऐसी पेरणवाली ।। म्हांने...........

अमलां झोंको यूं लागे छै ओ सादा सालूड़ी ।
गजरा सोवे चूड़ला सोवे ऊपर चम्पा साड़ी ।। म्हांने...........

जोयड़ सोवै बिछिया सोवे ऊपर चम्पा साड़ी ।
अंगिया ऊपर केसर्यो सोवे ऐसी पेरणवाली ।। म्हांने...........

स्वरलिपि (ताल–दादरा)

×	०	×	० म म
			म्हां ने
म प ग	सारे सा रे	नी — सा	रेग ग —
थां ऽ णो	झों को ऽ	यूं ऽ ला	गैऽ छै ऽ
पमे धप —	म ग सा	सा रे नी	सा, म म
ओऽ ऽऽ ऽ	मी ठा ऽ	बो ऽ ल	णी, म्हां ने

अन्तरा

म म म	मप म रे	रेग म म	पध ध —
में म द	सोऽ वे ऽ	रऽ ख ड़ी	सोऽ बे ऽ
म नी ध	प म —	गरे ग प	म — —
ऊ प र	चं पा ऽ	साऽ ऽ ऽ	ड़ी ऽ ऽ
रेग म म	मप म रे	रेम म म	पध ध प
हिऽ ख ड़ा	ऊऽ प र	हांऽ स ज	सोऽ बै ऽ
प नी ध	प म म	गम रेग धप	म, म म
ऐ ऽ सी	पे र णा	वाऽ ऽऽ ऽऽ	णी, म्हां ने
×	०	×	०

शेष अन्तरे भी इसी प्रकार गाये जाते हैं।

देखो मोरी संझ्या ए...

देखो मोरी संझ्या ए विरमादतजी रे छावे री गणगौर
ईसरदास ल्याया छै गणगौर रोवांबाई रै वीरा री गणगौर
झाला देती आवे छै गणगौर मुजरो करती आवे छैं गणगौर
आगे ईसर लिर्या छै गणगौर प्याला पीता आवे राव राठौड़
माथा ने मेंमद पेरल्यो ए गणगौर रखड़ी घड़ावे राव राठौड़
कानां ने कुण्डल पेरल्यो ए गणगौर झूटणा घड़ावे राव राठौड़ ।

स्वरलिपि (ताल–कहरवा)

ध़ सा सा सा	सारे रेग म गरे	रेग ग रेरे साध़	सा सारे — –सा
दे खो मो री	सझ याऽ ए ऽऽ	विर मा दत जीरे	छा वेऽ ऽ ऽऽ
रेग गरे रेग रे	सा — — म	म गग रे साध़	सा सारे — –सा
रीऽ ऽऽ गऽ ण	गौ ऽ ऽ र	ई सर दा सऽ	ल्या याऽ ऽ ऽऽ
रेग गरे रेग रे	सा — — म		
छैऽ ऽऽ गऽ ण	गौ ऽ ऽ र		
×	०	×	०

'ईसरदास लाया छै गणगौर' के समान आगे 'पीता आवे राव राठौड़' तक की पंक्तियाँ गाई जाएँगी, पश्चात् निम्न धुन में शेष पक्तियाँ गावें—

ध़ धध़ सासा सा-	रेग –रे रेग रेसा	सा — — म	म ग रे साध़
मा थाने मेंऽ मद	पेऽ ऽर ल्योए गण	गौ ऽ ऽ र	र ख ड़ी घऽ
सा सारे — -सा	रेग गरे रेग रे	सा — — सा	
ड़ा वेऽ ऽ ऽऽ	राऽ वऽ राऽ ऽ	ठौ ऽ ऽ ड़	

म्हारी घूमर छे नखराली ए माँय...

म्हारी घूमर छे नखराली ए माँय पिया प्यारी कामणगारी छंदगाळी ए माँय ।
लूवर रमवा म्हें जास्यां गोरी घूमर रमवा म्हें जास्यां ।।
म्हांने पन्ने रंग रो पोमचियो रंगादे मांय म्हांने सोने रंग रो टेवटियो घड़ादे ए मांय ।
म्हांने रमतां ने काजल टीकी लादा ए मांय म्हांने घूमतड़ी ने लाडूड़ा दीजे ए मांय ।
म्हांने खीचियां रे घरे मत दीजे ए मांय ए तो खीचियाँ खींच छुड़ावे ए मांय ।
म्हांने भाटियां रे घरे मत दीजे ए मांय ए तो भाटी लेले भाटा मारण उठे ए मांय ।।
म्हांने हाड़ा रे घर मत दीजे ए मांय ए तो हाड़ा व्है दिल रा गाड़ा ए मांय ।
म्हांने देवड़ा रे घर मत दीजे ए मांय ए तो देवड़ा उतारे घर रा लेवड़ा ए मांय ।।

स्वरलिपि (ताल–कहरवा)

प प	म ध ध ध	प प म म	रे म पध पम
म्हा री	ऽ घू म र	छे ऽ न ख	रा ळी एऽ ऽऽ
रे रे प प	म ध ध धध	प प म म	रे म पध पम
माँ य पि या	प्या री का मण	गा री छं द	गा ळी एऽ ऽऽ
रे –ग रेग सा	सारे रे सा नी़	सा — रेम पम	रे रे– –सा नी़
मां ऽऽ ऽऽ य	लूऽ व ऽ र	र म वाऽ ऽऽ	ऽ म्हेंऽ ऽजा ऽ
सा सा रेग रेग	रे सा रे सा	नी़ सा सा रेम	पम रेम रेसा नी़
स्यां ऽ गौऽ रीऽ	घू म ऽ र	र म वा ऽऽ	ऽऽ म्हेंऽ ऽजा ऽ
सा –,			
स्याँ ऽ,			
×	×	×	×

लालर लेदो रे नोखीला...

लालर लेदो रे नोखीला म्हारो जीव तरसे लालर लेदो रे ।।

रखड़ी बांधूं तो म्हारे काळो डोरो आटी रो ।
बेसर बिना तो म्हारो जीव तरसे लालर लोदो रे ।।

नथड़ी बांधूं तो म्हारे काळो डोरो आटी रो ।
बिंदली बिना तो म्हारो जीव तरसे लालर लेदो रे ।।

लेरियो ओढ़ूं तो म्हारे मन नहीं भावे ।
सालूड़े बिना तो म्हारो जीव तरसे लालर लेदो रे ।।

हंसली पेरूं तो म्हारे मन नहीं भावे ।
तमण्ये बिना तो म्हारो जीव तरसे लालर लेदो रे ।।

बाजू बांधूं तो म्हारे मन नहीं भावे ।
चूड़ला बिना तो म्हारो जीव तरसे लालर लेदो रे ।।

स्वरलिपि (ताल–कहरवा)

प — प प	म म प ध	प प म म	रे म पध पम
ला ऽ ल र	ले दो रे नो	खी ला म्हा रो	जी व तऽ रऽ
रे म पध पम	रे — ऩी रे	सा — — —	
से ऽ लाऽ लर	ले ऽ दो ऽ	रे ऽ ऽ ऽ	
२	×	२	×

अन्तरा

			प़प़ ऩी — ऩी
			रख ड़ी ऽ बां
सा सा रे प	म म रे सा	ऩी रे सा —	म ध ध नी
धूं तो म्हा रे	का ळो डो रो	आ टी रो ऽ	बे स र बि
ध प म म	रे म पध पम	रे — पध पम	रे — ऩी रे
ना तो म्हा रो	जी व तऽ रऽ	से ऽ लाऽ लर	ले ऽ दो ऽ
सा — — —			
रे ऽ ऽ ऽ			

शेष अंतरे भी इसी प्रकार गाये जाएंगे।

झीणी घूमर लो जीजीबाई...

झीणी घूमर लो जीजीबाई जीणी घूमर लो ।।
सालूड़ा रा झाला जीजीवाई दुपट्टा रा झाला ।।

जीजीबाई झीणी घूमर लो जीजीवाई झीणी घूमर लो ।
माथा ने मेंमद लो जीजीवाई झीणी घूमर लो ।।

कानां ने झालज लो जीजीबाई झीणी घूमर लो ।
हिवड़ा ने हांसज लो जीजीबाई झीणी घूमर लो ।।

बैयां ने चूड़लो लो जीजीबाई झीणी घूमर लो ।
पगल्या ने पायल लो जीजीबाई झीणी घूमर लो ।।

गुलाबी साड़ी गोरा सा मुखड़ा पे...

गुलाबी साड़ी गोरासा मुखड़ा पे प्यारी लागे रा[1]
माथा ने मेंमद अजब बण्यो छै रा,
रखड़ी रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी ··
कानां ने जालज अजब बण्यो छै रा ,
झूटणा रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी····
हिवड़ा ने हांसज अजब बण्यो छै रा,
तमण्या रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी····
मुखड़ा ने वेसर अजब बण्यो छै रा,
मोतीड़ा रो भारी छै वणाव रा ।   गुलावी साड़ी ··
बैयां ने चूड़लो अजब बण्यो छै रा,
गजरा रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी ···
पगल्या ने पायल अजब बण्या छै रा,
विछिया रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी····
सर ने सालूड़ो अजब बण्यो छै रा,
केसरिया रो भारी छै बणाव रा ।   गुलाबी साड़ी····

---

1 लोकगायिका श्रीमती नारायणीदेवी से लिखित ।

माथा नैं मेमद प्हैरिया सरी...

माथा नैं मेमद प्हैरिया सरी कोई रखड़ी रो हद सिणगार[1]
ओ ए म्हारी चन्द्र गौरज्या
ओ ए म्हारी रूप गौरज्या
रतना री गलियां हस्ती घूमता
गड़ कोटा सूं उतरो सरी
हाथ कंवळ केरो फूल ओ ए म्हारी ।।
सीसड़लो नारेळ ज्यूं सरी
वेणी वासग नाग ओ ए म्हारी....।।
भंवारा भंवरा खींवै सरी
लिलवट आंगल च्यार ओ ए म्हारी....।।
आंखड़ल्यां रतनाळियां सरी
नाक सुवै केरी चोंच ओ ए म्हारी....।।
मिसरायां चुनी जड़ी
दांत दाड़िम केरो बीज ओ ए म्हारी....।।
हिवड़ो संचै ढाळियो सरी
छाती वजर कंवाड़ ओ ए म्हारी....।।
पसवाड़ो बीजळखींवै सरे
पेट पीपल केरो पान ओ ए म्हारी ..।।
मूंगफली सी आंगल्यां सरी
बांह चंपा केरी डाल ओ ए म्हारी....।।
पिंडलियां रोमालियां सरी
जांघ देवळ केरो थाम ओ ए म्हारी....।।
एड़ी चिलकै आरसी सरी
पंजो सजवां सूंठ ओ ए म्हारी....।।
घैर घुमालो घाघरो सरी
ओढ़ण दखणी चीर ओ ए म्हारी....।।

---

1 गणगौर का नख-शिख गीत । लोकगायिका नारायणीदेवी से लिखित ।

पांचे पुजारी ने पांचे पुजारा[1]

पांचे पुजारी ने पांचे पुजारा
जावांज बाई केद्‌यो रो जलम
पाँच माँरो जलम कुण रे लेवराविये गौर
कै गामे रा लेवराविये कै पेटेले लेवराविये
कुण है थारो बापो नै कुण है थारे मांव रे
मोटे मोटे रे गौर होवे कै पेटोरां लेवराविये।

स्त्रियां गौर से सम्बोधित कर कहती हैं कि हे गौर, पांच तो तुम्हें पूजनेवाले पुजारी और पांच ही पुजवानेवाले हैं जो तेरे लिए जाजम बिछा रहे हैं। पांचों ही जाजम बिछा रहे हैं तो गौर कौन लिवा लायेगा? गाँववाले लिवा लायेंगे और वे ही सब खर्चा करेंगे। गौर तुम्हारा कौन तो पिता और कौन माता है? गाँव के पटेल ही मेरे सब कुछ हैं। उन्हीं ने मुझे यहां लाकर बिठाया है।

भीलवाड़ा मांहे जो हे फूलरा रा सोह, नणदेऊं ऊचा चेरिया
फूलराँ पारो नीचा वीणो, वीणीने घेर आणों वेरे पोवो
थाली हूं बेंदावो ने गौर माते पेहरावों फूलरां नेचारो गौरे।

स्त्रियां अपने नणदोई से कह रही हैं–तुम भीलवाड़ा (बस्ती विशेष जहां ये लोग रहते हैं) जाओ। वहाँ ऊंचे-ऊंचे वृक्षों पर चढ़कर फल फूल पत्ते तोड़ नीचे डालो। उनकी माला बनाकर गौर को सजाओ। थाली में फल फूलों से उसका स्वागत करो।

सेवजी आणो आविया सेवजी ने पारवती है बेंवू है
पियरियो आणे जावूं इतरी बार कांई लागी है
हेवले पियरिये गिये ने जाती ने बार लागे
सेवजी ने मादेवजी तो आणे आविया रे जी
हे सेवजी ने पारवती जी एतरी बार के हे लागी

गौर को सिर पर लिये नाचते समय यह गीत गाया जाता है। शिवजी पार्वती को लेने आये हैं। दोनों साथ-साथ बैठे हैं। शिवजी, पार्वती को लेने आने में इतना समय क्यों लग गया?

---

[1] गरासियों में प्रचलित गणगौर गीत।

थोवो गैबरोबाई मूं चूनेरो मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं सेवजी आणो आविया
थोवो गैबरोबाई मूं टीलेरो मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं मादेवजी आणो आविया
थोवो गैबरोबाई मूं कानों रा झलेबा मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं मादेवजी आणो आविया
के जावो पेंडा पेंडा रे भाई जावो पेंडा पेंडा ।

गोरबाई, धैर्य धारण करो । हमारे घर कुछ दिन और रह जाओ । तुम्हारे लिए बाजार से चूंदड़ खरीद लायें । किस तरह ठहरूं ? शिवजी आणा आये हैं (लेने आये हैं) । इसी प्रकार सिर के लिए टीलड़ी, कानों के लिए झूमके, गले के लिए वांडला, हाथों के लिए चूड़ियां लाने को कहकर औरतें गणगौर को ठहराने की बात करती हैं और गणगौर उन्हें शिवजी के लेने आने की बात कह कर कुछ और ठहरने की मजबूरी व्यक्त करती है ।

टीलोरे मोलावो गूजरी थांई हेरे
थांरा जावे ने लेगेन वेहिया
झूमेरी मोलावो भीमे कुंणो हेरे
ए गुजरी थांई हेरे
वारद यूं कुंण हारो मोलावो
बाक रे नोथवो कुण मोलावो हेरे
ए गुजरी थांई मोलावो हेरे
टीलरो कानां रो मोलावो गुजरी थांई हेरे
चूनरी आलावो गुजरी थांई हेरे
देई रा हालूरा मोलावूं थाँई हेरे ।

हे गुजरी, टीलड़ी, झूमरा, वारदया, नथ आदि आभूषण तुम्हारे लिए ही खरीदे हैं । तुम शीघ्र तैयार हो जाओ । तुम्हारे लग्न का समय नजदीक आगया है । कहीं ऐसा न हो कि मुहूर्त चुक जाय । चूनरी, साड़ी तुम्हारे ही पहनने के लिए है । तुम शीघ्रता करो । रूठो मत । लग्न का मुहूर्त आगया है ।

चूनरी पेरे ओडे ने रेमवा नेरियूं
हो पायला पगेरां होनीरां रां हाटां
हो मोजरी मोलावो मोचीरां री हांटां
के पडेला मोलावो वाणीरां री हाँटां

पांचे पुजारी ने पांचे पुजारा[1]

पांचे पुजारी ने पांचे पुजारा
जावांज बाई केद्‌यो रो जलम
पाँच माँरो नलम कुण रे लेवराविये गौर
कै गामे रा लेवराविये कै पेटेले लेवराविये
कुण है थारो वापो नै कुण है थारे मांव रे
मोटे मोटे रे गौर होवे कँ पेटोरां लेवराविये ।

स्त्रियां गौर से सम्बोधित कर कहती हैं कि हे गौर, पांच तो तुम्हें पूजनेवाले पुजारी और पांच ही पुजवानेवाले हैं जो तेरे लिए जाजम बिछा रहे हैं। पांचों ही जाजम बिछा रहे हैं तो गौर कौन लिवा लायेगा? गाँववाले लिवा लायेंगे और वे ही सब खर्चा करेंगे। गौर तुम्हारा कौन तो पिता और कौन माता है? गाँव के पटेल ही मेरे सब कुछ हैं। उन्हीं ने मुझे यहां लाकर बिठाया है।

भीलवाड़ा मांहे जो हे फूलरा रा सोह, नणदेऊं ऊचा चेरिया
फूलराँ पारो नीचा वीणो, वीणीने घेर आणों वेरे पोवो
थाली हूं बेंदावो ने गौर माते पेहरावों फूलरां नेचारो गौरे ।

स्त्रियां अपने नणदोई से कह रही हैं–तुम भीलवाड़ा (बस्ती विशेष जहां ये लोग रहते हैं) जाओ। वहाँ ऊंचे-ऊंचे वृक्षों पर चढ़कर फल फूल पत्ते तोड़ नीचे डालो। उनकी माला बनाकर गौर को सजाओ। थाली में फल फूलों से उसका स्वागत करो।

सेवजी आणो आविया सेवजी ने पारवती है बेंवू है
पियरियो आणे जावूं इतरी बार कांई लागी है
हेवले पियरिये गिये ने जाती ने बार लागे
सेवजी ने मादेवजी तो आणे आविया रे जी
हे सेवजी ने पारवती जी एतरी बार के हे लागी

गौर को सिर पर लिये नाचते समय यह गीत गाया जाता है। शिवजी पार्वती को लेने आये हैं। दोनों साथ-साथ बैठे हैं। शिवजी, पार्वती को लेने आने में इतना समय क्यों लग गया?

---

[1] गरासियों में प्रचलित गणगौर गीत।

थोबो गैबरोबाई मूं चूनेरो मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं सेवजी आणो आविया
थोबो गैबरोबाई मूं टीलेरो मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं मादेवजी आणो आविया
थोबो गैबरोबाई मूं कानों रा झलेबा मोलावूं
किम कैरीनै थोवूं मादेवजी आणो आविया
के जावो पेंडा पेंडा रे भाई जावो पेंडा पेंडा ।

गोरबाई, धैर्य धारण करो । हमारे घर कुछ दिन और रह जाओ । तुम्हारे लिए बाजार से चूंदड़ खरीद लायें । किस तरह ठहरूं ? शिवजी आणा आये हैं (लेने आये हैं) । इसी प्रकार सिर के लिए टीलड़ी, कानों के लिए झूमके, गले के लिए वांडला, हाथों के लिए चूड़ियां लाने को कहकर औरतें गणगौर को ठहराने की बात करती हैं और गणगौर उन्हें शिवजी के लेने आने की बात कह कर कुछ और ठहरने की मजबूरी व्यक्त करती है ।

टीलोरे मोलावो गुजरी थांई हेरे
थांरा जावे ने लेगेन वेहिया
झूमेरी मोलावो भीमे कुंणो हेरे
ए गुजरी थांई हेरे
वारद यूं कुंण हारो मोलावो
बाक रे नोथवो कुण मोलावो हेरे
ए गुजरी थांई मोलावो हेरे
टीलरो कानां रो मोलावो गुजरी थांई हेरे
चूनरी आलावो गुजरी थांई हेरे
देई रा हालूरा मोलावूं थाँई हेरे ।

हे गुजरी, टीलड़ी, झूमरा, वारदया, नथ आदि आभूषण तुम्हारे लिए ही खरीदे हैं । तुम शीघ्र तैयार हो जाओ । तुम्हारे लग्न का समय नजदीक आगया है । कहीं ऐसा न हो कि मुहूर्त चुक जाय । चूनरी, साड़ी तुम्हारे ही पहनने के लिए है । तुम शीघ्रता करो । रूठो मत । लग्न का मुहूर्त आगया है ।

चूनरी पेरे ओडे ने रेमवा नेरियूं
हो पायला पगेरां होनीरां रां हाटां
हो मोजरी मोलावो मोचीरां री हांटां
के पडेला मोलावो वाणीरां री हाँटां